जयंत,—तब, तब,
कार्त्तिकेय,—ऐसे देवताँन के बचन सुनि खिन्न मन होइ कें (मुनि) बोले . . . .

(सवैया)

देखहु तौ जग-जीब की रीति-हिं, आपुने-ही हित सों हित ठाँनें ।
देवहु भूलि रहे इहि में, तब और की बात कहा कहि छाँनें ।।
का करतब्य, निसेध कहा, 'गिरिधारँन' कोऊ नहीं पैहचाँनें ।
स्वारथ में मन दौरि रह्यौ, परमारथ ता सों अकारथ जाँनें ।।

(दोहा)

निज अरि कारन हेत तुम, अस्थि चहँत मम देव ।
कैंसौ दुख मोहि मरँन कौ, सो नँहि जानत भेव ।।
सक्र चाँप टंकारि कें, हने अनेकँन पत्र ।
तिनँहि सहत दौरत भयौ, महाकाल-सम बृत्र ।।

(छप्पय)

तब सुरपति गहि-गदा, असुर-दिसि भए चलावत ।
ताहि पकर कर बाँम, तजी लखि कें ऐरावत ।।
तासों ह्वैकें बिकल भयौ गज, भूतल आवत ।
चेत खोइ, बल गोइ, तुरत गिरि पर्‌यौ महावत ।।
सुरनाथ महा संभ्रम सहित, उतरि सँमर ठाढ़े भए ।
सो लखि अमरँन हा, हा कियौ, उर अति ही चिंता-मए ।।

जयंत (सकंप)—तब,
कार्त्तिकेय,—

(दोहा)

तब मातलि लायौ सु रथ, सुंदर अर्ब लगाइ ।
ता पै बैठ सु पर्ब-पति, भिरे बृत्र सों जाइ ।।

जयंत—तब, तब,
कार्त्तिकेय,—

(अरिल्ल)

बृत्रासुर सह-कोपि, सूल कर धारि कें ।
धायौ सुरपति-ओर, घोर ललकारि कें ।।
सुनासीर, रनधीर, बीर तिँहि डाटि कें ।
कुलिस त्यागि सह सूल दियौ भुज-काटि कें ।।

जयंत (सानंद)—तब, तब,
कार्त्तिकेय,—

(दोहा)

तब दूजे कर परिघ गहि, हन्यों बासवहि झूँमि ।
ता प्रहार तें हाथ सों, कुलिस गिर्‌यौ रन-भूँमि ।।

(सोरठा)

लाज सहित सुर-राज, बज्र उठावन नँहि चहैं ।
तबहि दनुज-सिरताज, बिहँसि बचन बोलत भयौ ।।

बैठें जाइ मथनियाँ के ढिग, मैं तब रहौं छिपाँनी ।
'सूरदास' प्रभु अंतरजाँमी, ग्वालिनि-मन की जाँनी ।।"

एक दिन श्याम सुंदर कह रहे थे, "मैया, मुझे माखन भाता है; तू मेवा-पकवान के लिये कहती है, परंतु मुझे तो वे रुचते ही नहीं।' वहीं पीछे एक गोपी खड़ी श्यामसुंदर की बात सुन रही थी। उसने मन ही मन कामना की—"मैं कब इन्हें अपने घर माखन खाते देखूँगी; ये मथानी के पास जाकर बैठेंगे, तब मैं छिप रहूँगी?' प्रभु तो अंतर्यामी हैं, गोपी के मन की जान गये और उसके घर पहुँचे तथा उसके घर का माखन खाकर उसे सुख दिया—

'गए स्याँम तिहिं ग्वालिनि के घर।'

और तब उसे इतना आनंद हुआ कि वह फूली न समायी। सूरदासजी गाते हैं—

"फूली फिरति ग्वालि मन में री।
पूँछति सखीं परसपर बातें, पायौ परचौ कछू कहुँ तेंरी ?
पुलकित रोंम रोंम, गदगद मुख-बाँनी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हम कों क्यों न सुनावै ।।
तन न्यारौ, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप।
'सूरदास' कहै ग्वालि सखिनि सों, देख्यौ रूप अनूप ।।"

वह खुशी से छककर फूली-फूली फिरने लगी। आनंद उसके हृदय में समा नहीं रहा था। सहेलियों ने पूछा—'अरी' तुझे कहीं कुछ पड़ा धन मिल गया क्या?' वह तो यह सुनकर और भी प्रेम विह्वल हो गयी। उसका रोम-रोम खिल उठा, वह गद्गद् हो गयी, मुँह से बोली नहीं निकली। सखियों ने कहा—'सखि, ऐसी क्या बात है, हमें सुनाती क्यों नहीं? हमारे तो शरीर ही दो हैं, हमारा जी तो एक ही है—हम-तुम दोनों एक ही रूप हैं। भला, हमसे छिपाने की कौन-सी बात है?' तब उसके मुँह से इतना ही निकला—'मैंने आज अनूप रूप देखा है।' बस, फिर वाणी रुक गयी और प्रेम के आँसू बहने लगे! सभी गोपियों की यही दशा थी।

"ब्रज घर-घर प्रघटी यै बात।
दधि-माँखन-चोरी करि कें हरि, ग्वाल-सखा-सँग खात ।।
ब्रज-बनिता यै सुनि मन हरषति, सदँन हमारे आवें।
माँखन खात अचाँनक पावें, भुज-भरि उरहिं छिपावें।"
मन हीं मन अभिलाष करति सब, हृदें धरति यै ध्याँन।
'सूरदास' प्रभु कों घर में लै, दैहों माँखन खाँन ।।"

❀

"चली ब्रज घर-घरनि यै बात।
नंद-सुत, सँग सखा लीन्हें, चोरि माँखन खात ।।
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ।
कोउ कहति मोहिं देखि द्वारें, उतहिं गए पराइ ।।
कोउ कहति, किहिं भाँति हरि कों, देखों अपने धाँम।
हेरि माँखन देहुँ आछौ, खाँइ जितनों स्याँम ।।
कोउ कहति मैं देखि पाऊँ, भरि धरों अँकवार।
कोउ कहति मैं बाँधि राखों, को सकै निरवार ।।
'सूर' प्रभु के मिलन कारन, करति बिबिध बिचार।
जोरि कर बिधि कों मनावति पुरुष नंद-कुँमार ।।"

रातों गोपियाँ जाग-जागकर प्रातःकाल होने की बाट देखतीं। उनका मन श्रीकृष्ण में लगा रहता। प्रातःकाल जल्दी-जल्दी दही मथकर, माखन निकालकर छींके पर रखतीं; कहीं प्राणधन आकर लौट न जायँ, इसलिये सब काम छोड़कर वे सबसे पहले यही काम करतीं और श्यामसुंदर की प्रतीक्षा में व्याकुल होती हुई मन ही मन सोचतीं—'हा, आज प्राण प्रियतम क्यों नहीं आये? इतनी देर क्यों हो गयी? क्या आज इस दासी का घर पवित्र न करेंगे? क्या आज मेरे समर्पण किये हुए इस तुच्छ माखन का भोग लगाकर स्वयं सुखी होकर मुझे सुख न देंगे? कहीं यशोदा मैया ने तो उन्हें नहीं रोक लिया? उनके घर तो नौ लाख गौएँ हैं। माखन की क्या कमी है! मेरे घर तो वे कृपा करके ही आते हैं!' इन्हीं विचारों में आँसू बहाती हुई गोपी क्षण-क्षण में दौड़कर दरवाजे पर जाती, लाज छोड़कर रास्ते की ओर देखती, सखियों से पूछती। एक-एक निमेष उसके लिये युग के समान हो जाता! ऐसी भाग्यवती गोपियों की मनःकामना भगवान् उनके घर पधारकर पूर्ण करते। सूरदास जी ने गाया है—

"प्रथम करी हरि माँखन-चोरी।
ग्वालिनि मन-इच्छा करि पूँरन, आपु भजे ब्रज-खोरी॥
मन में यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकें माँखन खाउँ॥
बाल रूप जसुमति मोहि जानें, गोपिनि मिलि सुख-भोग।
'सूरदास' प्रभु कहत प्रेम सों, ए मेरे ब्रज लोग॥"

—सूरसागर ३५२।८८६

अपने निज जन ब्रजवासियों को सुखी करने के लिये ही तो भगवान् गोकुल में पधारे थे माखन तो नंदबाबा के घर पर कम न था, लाख-लाख गौएँ थीं। वे चाहे जितना खाते-लुटाते, परंतु वे तो केवल नंदबाबा के ही नहीं, सभी ब्रजवासियों के अपने थे, सभी को सुख देना चाहते थे। गोपियों की लालसा पूरी करने के लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा-चुराकर माखन खाते। यह वास्तव में चोरी नहीं, यह तो गोपियों की पूजा-पद्धति का भगवान् के द्वारा स्वीकार था। भक्तवत्सल भगवान् भक्त की पूजा स्वीकार कैसे न करें?

भगवान् की इस दिव्यलीला—माखन चोरी का रहस्य न जानने के कारण ही कुछ लोग इसे आदर्श के विपरीत बतलाते हैं। उन्हें पहले समझना चाहिये चोरी क्या वस्तु है, वह किस की होती है और कौन करता है। चोरी उसे कहते हैं जब किसी दूसरे की कोई चीज, उसकी इच्छा के बिना, उसके अनजान में और आगे भी वह न जान पाये—ऐसी इच्छा रखकर ले ली जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के घर से माखन लेते थे उनकी इच्छा से, गोपियों के अनजान में नहीं—उनकी जान में, उनके देखते-देखते और आगे जनाने की कोई बात ही नहीं—उनके सामने ही दौड़ते हुए निकल जाते थे। दूसरी बात महत्त्व की यह है कि संसार में या संसार के बाहर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो श्रीभगवान् की नहीं है और वे उसकी चोरी करते हैं। गोपियों का तो सर्वस्व श्रीभगवान् का था ही, सारा जगत् ही उनका है। वे भला, किसकी चोरी कर सकते हैं? हाँ चोर तो वास्तव में वे लोग हैं, जो भगवान् की वस्तु को अपनी मानकर ममता-आसक्ति में फँसे रहते हैं और दंड के पात्र बनते हैं। उपर्युक्त सभी दृष्टियों से यही सिद्ध होता है कि माखन-चोरी चोरी न थी, भगवान् की दिव्य लीला थी। असल में गोपियों ने प्रेम की अधिकता से ही भगवान् का प्रेम का नाम 'चोर' रख दिया था, क्योंकि वे उनके 'चित्तचोर' तो थे ही।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण को भगवान् नहीं मानते, यद्यपि उन्हें श्रीमद्भागवत में वर्णित भगवान् की लीला पर विचार करने का कोई अधिकार नहीं है, परंतु उनकी दृष्टि से भी इस प्रसंग में कोई आपत्तिजनक बात नहीं है, क्योंकि श्रीकृष्ण उस समय लगभग दो-तीन वर्ष के बच्चे थे और

गोपियाँ अत्यधिक स्नेह के कारण उनके ऐसे-ऐसे मधुर खेल देखना चाहती थीं । आशा है, इससे शंका करनेवालों को कुछ संतोष होगा ।[१]

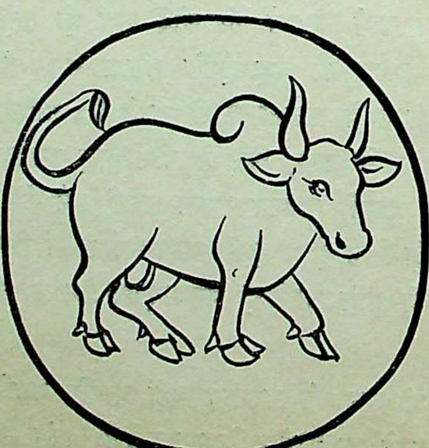
१. श्रीसूर ने गोपियों के घरों में माखन-चुरा कर खाते हुए 'श्रीमाखन-चोर' का बड़ा सुंदर वर्णन किया है, जैसे—

"आज सखी, मनि-खंब-निकट हरि जहाँ गोरस कों गो-री ।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यों सिसु, प्रघट करै जिन चोरी ।।
अरध-विभाग आज ते हँम-तुम्हँ, भली बनीं हैं जोरी ।
माँखन खाहु कित-हिं डारत हौ, छाँड़ि देहु मति भोरी ।।
बाँट न लेहु, सबै चाँहत हौ, इहै बात है थोरी ।
मींठौ अधिक परँम रुचि लागैं, तौ भरि लेहु कँमोरी ।।
प्रेंम-उँमगि धीरज न रह्यौ तब, प्रघट हँसी मुख-मोरी ।
'सूरदास' प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी ।।

अथवा—

गोपाल, दुरें-दुरें माँखन-खात ।
देखि सखी, सोभा जु बनीं है, स्याँम-मनोहर-गात ।।
उठि अवलोकि ओट ठाढ़ी ह्वै, जिहिं बिधि नहिं लखि लेत ।
चकित नैंन, चहूँ दिसि चितवत, और सखँन कों देत ।।
सुंदर कर-आँनन-सँमीप अति राजत या आकार ।
जलरुह मँनों बैर बिधु सों तजि, मिलत लऐं उपहार ।।
गिरि-गिरि परत बदँन ते उर पर, दुधि-सुत के कछु बिंद ।
माँनों सुभग सुधा-कँन बरखत, प्रिय-जँन-आगँम इंद ।।
बाल-बिनोद बिलोकि 'सूर' प्रभु, सिथिल भई ब्रज-नारि ।
फुरै न बचँन बरजिवे-कारँन, रही बिचारि-बिचारि ।।

* राग—गूजरी ।
† राग—धनाश्री ।



महाभारत और श्रीकृष्ण

श्री मुंशीराम शर्मा

महाभारत मुख्य रूप से कौरवों और पांडवों के वृत्तांतों से भरा पड़ा है, पर प्रासंगिक रूप से उसमें श्रीकृष्ण का चरित्र भी आ गया है। इस चरित्र का जितना और जैसा रूप महाभारत में अंकित हुआ है, उसको उसी रूपमें प्रस्तुत करना इस लेख का लक्ष्य है।

आदिपर्व

श्रीकृष्ण के प्रारंभिक बालचरित्र का उल्लेख स्वभावतः महाभारत में नहीं किया गया। उनके जीवन का जितना संबंध कौरवों और पांडवों के जीवन वृत्तों के साथ है, उतना ही महाभारत में पाया जाता है। श्रीकृष्ण का नाम सर्वप्रथम 'आदिपर्व' के अंतर्गत द्रौपदी-स्वयंवर में आया है। इस स्वयंवर को देखने के लिये अनेक क्षत्रिय रंगभूमि में एकत्रित हुए थे। रुद्र, आदित्य, वसु आदि देवगण और सुपर्ण, उरग, गुह्यक, चारण, विश्वावसु, देवर्षि आदि गंधर्व भी आये थे।[1] बलराम और कृष्ण आदि यदुवंशी वीर भी वहाँ पहुँचे। महाभारत के अनुसार इसी स्वयंवर भूमि में श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम पांडवों को देखा और संकेत द्वारा उनकी उपस्थिति बलराम को सूचित की।[2] अर्जुन के लक्ष्यभेद के उपरांत श्रीकृष्ण पुनः पांडवों का परिचय देते हुए बलराम से कहने लगे—

"य एष सिंहर्षभखेलगामी महद्धनुः कर्षति तालमात्रम्।
एषोऽर्जुनो नाऽत्र विचार्यमस्ति यद्यस्मि संकर्षण वासुदेवः।।

अरे अर्जुन, युद्ध के समय यह कश्मल कहाँ से आ गया ? यह तो अनार्यों को होता है। यह दुखद और अकीर्तिकर है। तुम कायर मत बनो। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। हृदय की क्षुद्र दुर्बलता छोड़कर, खड़े हो जाओ।

आत्म-ज्ञान

"नजायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।"

आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है और न ऐसा ही है कि यह पहले थी और फिर न रहेगी। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और सर्वदा रहनेवाली है। शरीर के मरने पर भी यह नहीं मरती।

इसी संबंध में गीता के द्वितीय अध्याय के १२, १३, १६, १६, २२, २३, तथा अध्याय ६ का ५ वाँ श्लोक भी देखने योग्य हैं।

योग

"योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धचसिद्धचोः समे भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।"

—गीता २।४८,५०

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।
यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्युते तदा ।।"

—गीता ६।१७,१८

"सिद्धि और असिद्धि में समान रहने का नाम योग है। योग कर्मों के करने में कुशलता है। युक्ताहार-विहार, कर्मों में युक्त चेष्टा, युक्त स्वप्नावबोध वाले को ही सुखद योग प्राप्त होता है। जब नियत चित्त आत्मा में स्थिर होता है और मानव समस्त कामनाओं से निस्पृह हो जाता है, तभी वह योगी कहलाता है।"

विनाश

"ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

—गीता २।६२,६३

"विषयों के ध्यान से आसक्ति, आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति भ्रंश, उससे बुद्धिनाश और बुद्धि के नष्ट होने से विनाश हो जाता है।"

शांति

"आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ।।
विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ।।"

—गीता २।७०, ७१

"अचल रूप से स्थित, चारों ओर से ऊपर तक भरे हुए समुद्र में जैसे नदियों का जल समा जाता है, वैसे ही कामनाएँ जिस व्यक्ति में प्रविष्ट हो जाती हैं (पर उसके अंदर कोई हलचल या

उपद्रव उत्पन्न नहीं कर पातीं) उसी को शांति प्राप्त होती है, कामनाओं के पीछे भागनेवाले को नहीं।"

"जो व्यक्ति समस्त कामनाओं को छोड़कर निःस्पृह होकर विचरता है, ममत्व और अहंकार से रहित हो जाता है, वही शांति प्राप्त करता है।"

ज्ञानयोग

"सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।।
ज्ञानग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ।।"

—गीता ४।३६, ३७'३८, ३९

"ज्ञान के समान पवित्र और कुछ नहीं है। ज्ञानाग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है। ज्ञान की नौका पर चढ़कर मानव पाप के समुद्र को पार कर जाता है। ज्ञान से परम शांति शीघ्र ही प्राप्त होती है।"

कर्मयोग

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।।
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ।।
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।।"

—गीता २।४७, ३।८, ९, ३५

"करणीय कर्म के करने में ही मानव का अधिकार है, उसकी फल-प्राप्ति में नहीं। अतः न तो कर्मफल को कर्म करने का प्रेरक हेतु बनाओ और न अकर्म करो। अपने लिये नियत कर्म को करो। कर्म अकर्म से श्रेष्ठ है। यज्ञ अथवा परोपकार के लिये किये गये कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्म बंधन का कारण हैं। अतः आसक्ति छोड़कर कर्म करना चाहिये। अपना गुणरहित कर्तव्य दूसरे के भली-भाँति संपादित कर्तव्य की अपेक्षा श्रेयस्कर है। अपने लिये निश्चित कर्तव्य का पालन करते हुए मर जाना अच्छा है, पर दूसरे के लिये नियत किये हुए कर्म को कभी ग्रहण न करना चाहिए।"

भक्ति-योग

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंतिते ।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजंदेहं स याति परमां गतिम् ।।
सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ।
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।।
अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।"

—गीता ७।१४, ८।१३, ९।१४, २२

"मेरी दैवी गुणमयी माया अनुल्लंघनीय है, परंतु जो मेरी शरण आ जाते हैं, वे इस माया से पार हो जाते हैं। ओ३म् अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ जो शरीर को छोड़ता है, वह परम गति को प्राप्त करता है। लगातार मेरे नाम को जपता हुआ, दृढ़-व्रती बनकर मेरी सेवा करता हुआ और भक्तिपूर्वक मुझे प्रणाम करता हुआ जो व्यक्ति नित्य भक्ति-योग में निरत रहता है, वही मेरा सामीप्य प्राप्त करता है। अनन्य रूप से मेरा ही चिंतन करते हुए जो भक्त उपासना करते हैं, उनके योग क्षेम को मैं ही वहन करता हूँ।

इसी संबंध में १२ वें अध्याय के २, ८ तथा १३से लेकर २० तक के श्लोक ध्यान देने योग्य हैं।

अध्याय १३ में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विवेचन; अध्याय १४ में सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण की व्याख्या; अध्याय १५ में क्षर और अक्षर पुरुष का ज्ञान; अध्याय १६ में दैवी और आसुरी संपत् का वर्णन; अध्याय १७ में श्रद्धा, यज्ञ, दान, तप आदि का त्रिविध विभाजन और अध्याय १८ में संन्यास से कर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। गीता समस्त औपनिषद्-ज्ञान का सार कहलाती है। श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये ज्ञान से अर्जुन प्रबुद्ध हो उठा। उसका मोह नष्ट हो गया और वह युद्ध में प्रवृत्त हुआ।

भीष्मपर्व से मौसलपर्व तक

इस युद्ध में भीष्म, जयद्रथ, कर्ण, द्रोण और दुर्योधन की मत्यु श्रीकृष्ण की नीतिमत्ता के कारण ही संभव हो सकी। महापराक्रमी भीष्म को मारने के लिये तो श्रीकृष्ण अत्यंत तीक्ष्ण चक्र सुदर्शन को लेकर और रथ को छोड़कर स्वयं आगे बढ़ गये थे।[1] उनके उस समय के क्रोधावेग को रोकने में अर्जुन भी असमर्थ प्राय हो गया था। जैसे आँधी में वृक्ष उड़ा चला जाता है, वैसे ही श्रीकृष्ण रोकनेवाले अर्जुन को अपने साथ लिये हुए वेगपूर्वक बढ़े चले जा रहे थे। बड़ी कठिनाई से अपने पैरों को अड़ाकर अर्जुन ने दसवें कदम पर उन्हें रोक पाया।[2]

जयद्रथ-वध श्रीकृष्ण की योगजन्य माया और चातुर्य का ही परिणाम था। कर्ण के रथ के पहिये जब कीचड़ में धस गये और वह उनको निकालने के लिये रथ से नीचे कूद पड़ा, तो श्रीकृष्ण अर्जुन को वाण चलाने के लिये प्रेरित करते रहे। कर्ण ने धर्म की दुहाई दी, तो श्रीकृष्ण ने ही उसे आड़े हाथों लिया और उसके धार्मिक पाखंड को दूर किया। इस प्रकार मानसिक बल में आहत होकर जब कर्ण अर्जुन से युद्ध में पुनः प्रवृत्त हुआ, तो श्रीकृष्ण की अनुमति से अर्जुन ने महान् ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित 'अंजलिक' नाम का वाण चलाकर सूर्यपुत्र कर्ण का शिर काट डाला।[3]

"द्रोणाचार्य जब तक शस्त्र धारण किये हैं, तब तक उन्हें कोई नहीं जीत सकता। जब वे शस्त्र रख दें, तभी मारे जा सकते हैं। अपने पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु का संवाद किसी विश्वसनीय व्यक्ति से सुनकर ही वे अस्त्र रख रख सकते हैं।"—आचार्य द्रोण की मृत्यु का यह उपाय भी श्रीकृष्ण ने ही बतलाया था।[4]

दुर्योधन का अंत भी श्री कृष्ण ने माया (छल) द्वारा कराया, क्योंकि धर्मयुद्ध में भीम दुर्योधन को अपनी गदा द्वारा पराजित नहीं कर सकता था। अतः मायावी दुर्योधन माया द्वारा ही निहत हो सका।[5]

इन सब बातों पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि पांडवों का पराक्रम, श्रीकृष्ण की बुद्धि से संयुक्त होकर ही कौरव-पक्ष के महान् वीरों को समाप्त करने में समर्थ हुआ।

वास्तव में पांडवों की विजय के मूल में श्रीकृष्ण ही थे। महाभारतकार कहता है—

१. भीष्मपर्व ५९।८८-९५। २. भीष्मपर्व ५९।१००-१०१। ३. कर्णपर्व ९०।१०८-११६ तथा ९१।१ से १२ और ५०। ४. द्रोणपर्व १४६।६४-१२२। ५. शल्यपर्व ७८।७,८

कृष्णो हि मूलं पांडूनां पार्थः स्कंध इवोद्गतः ।
शाखा इवेतरे पार्थाः पांचालाः पत्र संज्ञितः ।।
—द्रोणपर्व १८२-२३

"जैसे किसी वृक्ष का मूल उसका समस्त बोझ वहन करता है, उसका एक मात्र आश्रय होता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण पांडवों की विजय रूप वृक्ष के मूल थे। अर्जुन इस वृक्ष का स्कंध (तना) था। अन्य पांडव शाखा और पांचाल पत्तों के समान थे।" श्रीकृष्ण की नीतिमता और अर्जुन के गांडीव ने मिलकर समस्त अनार्य प्रवृत्तिवालों को समाप्त किया और आर्यत्व की प्रतिष्ठा की। कौरवों-की पराजय और पांडवों की विजय में इन दोनों शक्तियों का ही विशेष हाथ था।

समरभूमि में श्रीकृष्ण ने अर्जुन तथा अन्य पांडवों की भी कई वार रक्षा की। जब प्राग्ज्यो-तिष के राजा भगदत्त ने अर्जुन के वाणों से पीड़ित होकर वैष्णवास्त्र उठाया और उससे अपने अंकुश को अभिमंत्रित करके अर्जुन की छाती पर दे मारा, तो श्रीकृष्ण ने ही अर्जुन को अपने पीछे करके उसे स्वयं अपनी छाती पर ग्रहण कर लिया था, अन्यथा इस अंकुश से अर्जुन का प्राणांत होने में कोई संदेह नहीं था।[१]

अर्जुन के वाणों का निराकरण करनेमें अशक्त होकर जब क्षत-विक्षत कर्ण ने अपना समस्त पौरुष एकत्रित करके सर्प के समान प्रज्वलित, अत्यंत तीक्ष्ण एक शत्रुनाशक वाण धनुष पर चढ़ाया जिसे उसने अर्जुन को मारने के लिये सुरक्षित रख छोड़ा था, उस समय श्रीकृष्ण ने उस प्रदीप्त वाण को अर्जुन की ओर वेग से आते हुए देखकर बड़ी शीघ्रता से अश्वों को अपने पैरों से दबाकर घुटनोंके बल बैठा दिया। इस क्रिया-कौशल से रथ का बहुत सा भाग पृथ्वी में दब गया। रथ के नीचे झुक जाने से वह वाण अर्जुन के इंद्र प्रदत्त किरीट को ही बींध सका।[२] इस प्रकार कर्ण का छोड़ा हुआ वह वाण श्रीकृष्ण के कौशल के कारण व्यर्थ हो गया। अर्जुन बाल-बाल बच गये।

कर्ण को जो अमोघ शक्ति इंद्र ने दी थी उसे भी श्रीकृष्ण की नीति ने ही घटोत्कच पर चलवाकर अर्जुन के प्राण बचा लिये थे।[३]

युद्ध की समाप्ति पर, प्रथम दिन की रात्रि के समय श्रीकृष्ण ने समस्त पांडव-दल को शिविरों के बाहर रहने का आदेश दिया था और सब ने सरस्वती नदी के तट पर रात्रि व्यतीत की थी।[४] इस नीति ने भी पांडवों की रक्षा की।

जब पांडव, युद्धके अंत में, धृतराष्ट्र से मिलने गये, तो धृतराष्ट्र ने भीम से मिलने की इच्छा प्रगट की। श्रीकृष्ण उनकी पुत्र-शोक से धधकती हुई कोपाग्नि को समझ गये और उन्होंने भीम की लौह-मूर्ति धृतराष्ट्र के सामने प्रस्तुत कर दी, जो उनकी भीषण बाहुओं में पड़कर चकनाचूर हो गयी।[५] इस प्रकार श्रीकृष्ण ने भीम को मृत्यु के मुख में से निकाल लिया।

जब युधिष्ठिर वैराग्य के हिंडोले में झूलते हुए राज्य करनसे इनकार करने लगे, तो श्री-कृष्ण ने ही उनका शोक-शमन किया और निष्काम होकर प्रजा का अनुरंजन करते हुए कल्याण मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया।[६]

अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों सखा कहलाते हैं। महासमर के पूर्व जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण और उनकी सेना में से अपने लिये केवल श्रीकृष्ण को ही चुना, तो श्रीकृष्ण ने इसका कारण पूछा। अर्जुन बोले—

१. द्रोणपर्व २९।१८। २. कर्णपर्व ९०।२७,२६,३२। ३. द्रोणपर्व १७९।५७। ४. शल्यपर्व ६२।-३७,३९। ५. स्त्रीपर्व १२।१५,१६,१७। ६. आश्वमेधिकपर्व २।१,८

"भवांस्तु कीर्तिमांल्लोके तद्यशस्त्वां गमिष्यति ।
यशसां चाहमाप्यऽर्थी तस्मादसि मया वृतः ।।"

--उद्योगपर्व ७।३६

"आपकी कीर्ति संसार में फैली हुई है। आपके हमारी ओर हो जाने से वह यश भी हमारी ओर आ जायगा। इसी हेतु मैंने आपको चुना है।" इससे प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण अपने सद्गुणों के कारण उस समय विश्व विख्यात हो रहे थे। विश्व-ख्याति का ऐसा महापुरुष जिसके साथ होगा, उसकी कीर्ति निस्संदेह दिग्दिगंत व्यापिनी होगी। अर्जुन के संबंध में यही हुआ भी। उसका नाम आज तक श्रीकृष्ण के साथ लिया जाता है। महाभारत (भगवद्गीता) में लिखा है--

"यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिमम ।।"

--भीष्मपर्व ४२।७८

"जहाँ योगेश्वर कृष्ण और गांडीवधारी अर्जुन है, वहीं श्री है, वैभव है और विजय है।"

श्रीकृष्ण के ऐसे लोकोत्तर, पावन चरित्र पर कतिपय छिद्रान्वेषियों ने अनेक लांछन लगाये हैं। उन्हें व्यभिचारी, असत्यभाषी आदि कहकर अपमानित करने की चेष्टा की है पर, यह सब अनर्गल प्रलाप है। वे वास्तवमें उच्च कोटि के उज्ज्वल तथा तेजस्वी-चरित्रवाले थे और शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से अत्यंत विकसित उदात्त कोटि के मानव रूप में साक्षात् ईश्वर थे।[1] महाभारत के अनेक स्थलों पर उन्हें बलिष्ठ शरीर वाले योद्धा, नीति-निपुण राजदूत, अत्यंत दक्ष सारथी, समर विद्या में पारंगत, वेदों के विद्वान्, योगाचार्य, सत्यवादी, इंद्रियजयी और अत्यंत विनय संपन्न महापुरुष कहा गया है। परीक्षित को जीवित करने के समय उनके मुख से जो वाक्य निकले हैं, वे उनके जीवन की समस्त साधना को नितांत स्पष्ट कर देते हैं। वे कहते हैं—

"नोक्तं पूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ।
न च युद्धात्परावृत्तः तथा संजीवतामयम् ।।
यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणश्च विशेषतः ।
अभिमन्योः सुतो जातो मृतो जीवत्वयं तथा ।।
यथा सत्यंच धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।
तथा मृतः शिशुरयं जीवतादभिमन्युजः ।।
यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहतौ मया ।
तेन सत्येन बालो हि पुनः संजीवतामयम् ।।
इत्युक्तो वासुदेवेन स बालो भरतर्षभ !
शनैः शनैर्महाराज प्रास्पंदत सचेतनः ।।"

—आश्वमेधिकपर्व ६९।१९, २०, २२, २३, २४

"मैंने खेलकूद में भी कभी मिथ्याभाषण नहीं किया है और युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखायी है। मेरे इस पुण्य के प्रभाव से अभिमन्यु का यह बालक जीवित हो उठे। यदि धर्म और ब्राह्मण मुझे विशेष रूप से प्रिय हैं, यदि सत्य और धर्म मुझ में सदैव प्रतिष्ठित रहे हैं, यदि कंस और केशी

१. द्रोणपर्व अध्याय ११ में धृतराष्ट्र ने संजय से श्रीकृष्ण के बल-पराक्रम का वर्णन किया है, जिसमें उनके बाल्यावस्था में ही अश्वराज, वृषभासुर, प्रलंब, नरकासुर, कंस आदि के मारने का उल्लेख है।

भीष्मपर्व में अध्याय ६५ से ६७ तक विश्वोपाख्यान है, जिसमें श्रीकृष्ण के आध्यात्मिक-विकास का चित्रण ईश्वर के रूप में किया गया है।

धर्म पूर्वक हमारे हाथ से मारे गये हैं, तो उस सत्य और धर्म के प्रभाव से यह बालक जीवित हो उठे। वासुदेव के ऐसा कहने पर बालक धीरे-धीरे साँस लेने लगा।"

यदि वाणी में सत्य का बल है, तो वह निस्संदेह फलवती होती है। श्रीकृष्ण के वचन सफल हुए और परीक्षित के निर्जीव मांसपिंड में चेतना का संचार हो उठा। जीवन-संचार का यह प्रभाव श्रीकृष्ण के निर्मल चरित्र और उज्ज्वल आध्यात्मिक शक्ति का ही परिणाम था।

श्रीकृष्ण का जो चरित्र आशा और उल्लास का प्रतीक है, जिसने एक वार समस्त विश्व को अपने यशःसौरभ से व्याप्त एवं प्रभावित किया था, जो सात्वत धर्म का प्रतिष्ठाता तथा अनासक्ति योग का आचार्य था, उस जीवन का पटाक्षेप जिन करुण स्मृतियों के बीच हुआ, उन्हें अनुभव करके मानव-हृदय कराह कर चीख उठता है। जिस महाप्राण ने महाभारतीय समर में पांडवों को विजय दिलायी, वह दैवाधीन हो अपने ही यादव-वंश को विनाश की कराल दाढ़ों में जाने से न बचा सका। उसकी आँखों के ही सामने उसके पुत्र-पौत्रादि, पारिवारिक बंधु-बांधवादि पारस्परिक संघर्ष की अग्नि में पड़कर भस्मीभूत हो गये। अधिकांश उन्हींके हाथों से मारे गये। अंत में वे स्वयं भी एक बहेलिये के वाण से आहत होकर अपने लीला-धाम में प्रविष्ट हुए।[1] उनके पश्चात् अर्जुन जैसे धनुर्धर के रहते हुए भी यदुकुल की स्त्रियों की जो दुर्दशा हुई[2] उसे पढ़कर मानव का हृदय विचलित हो उठता है। तो क्या भारत ग्रीक-ग्रंथों जैसा विषादांत काव्य है?

महाभारत में सब कुछ है, यह सत्य है, पर उसके पढ़ने से गृह-युद्ध की जो विभीषिका खड़ी हो जाती है, आत्म संहार का जो वीभत्स चित्र उपस्थित हो जाता है, वह हृदय-गगन को भेदकर निकली हुई हाहाकार की करुण ध्वनि से इस व्योमविवर को आप्लुत भी कर देता है। जो यथार्थ है, इतिहास (ऐसा ही निश्चय हुआ) है, उससे मानव अपनी आँखें कैसे मूँद सकता है?

महाभारत की कथा और श्रीकृष्ण का चरित्र हमारे सामने जीवन का कठोर सत्य उपस्थित करते हैं। जीवन का यह यथार्थवाद रामायण के आदर्शवाद से नीचे ही सही, पर वह हमारी आँखें खोलने के लिये पर्याप्त सामग्री रखता है। आदर्शवाद हमारी आँखों को ऊपर ले जाता है, पर प्रत्यक्ष-वाद उन्हें सामने, पीछे और अगल-बगल देखने के लिये विवश कर देता है।

[1]. **मौसलपर्व, अध्याय ४।**

[2]. **मौसलपर्व, अध्याय ७।**

गीता-ज्ञान

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

गीता-ज्ञान मनुष्य के लिये है। मनुष्य के जीवन की समस्याओं को सुलझाने की सामग्री गीता में है, यही इसके नित्य-मूल्य का कारण है। आज भी वह जीवन के निकट की वस्तु है, इसीलिये उसमें रस है। जीवन से परे किसी अनजाने स्वर्ग की टोह में गीताकार ने अपना प्रयत्न नहीं किया। नित्य प्रति जीवन में जो समस्याओं का जमघट है--जिसे संघर्ष कहा जाता है, उसे बुद्धि की सहायता से सुलझा कर निर्मल मन और स्पष्ट कर्म के द्वारा जीवन-यात्रा में अग्रसर होना इसी लक्ष्य के साथ गीताकार बार-बार हर सिद्धांत का सूत्र मिलाते हैं। यही उनका अविचल केंद्र है, जिस पर व्यक्ति को खड़ा करके वे विश्व के साथ समता प्राप्त कराना चाहते हैं। यह दृष्टिकोण मानवी-बुद्धि को ग्राह्य है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति इसे अपने लिये अपना कर उसके साथ तन्मय हो सकता है। गीता न केवल योगी के लिये है, न संसार छोड़कर वैराग्य-साधनेवालों के लिये है, न कर्म-कांड में रुचि रखनेवालों के लिये है और न नाम जपनेवाले भक्तों के लिये है, वह इन सब के लिये एवं इनसे भी अधिक उन सब मानवों के लिये है जो जीवन के मार्ग पर कहीं न कहीं चल रहे हैं। उनमें से हरएक के जीवन की समस्या तय करने के लिये प्रकृति के दिये हुए साधनों में हमारे पास मन, शरीर, इंद्रियाँ और बुद्धि हैं। इनसे ठीक प्रकार काम लेकर मनुष्य अपनी मानवोचित महिमा को प्राप्त करता है और जीवन में कठिनाइयों पर विजय पाता है। यह प्रश्न लगभग वैज्ञानिक स्वरूप रखता है और गीता उसके समाधान का वैज्ञानिक कर्म शास्त्र है।

गीताकार का दृष्टिकोण स्पष्ट, निश्चित और सरल ढंग से व्यक्त किया गया है, उसमें काव्य का सौंदर्य है। मानवी जीवन में भी एक छिपा हुआ सौंदर्य है जिसे प्रकट करना जीवन की कला है। गीताकार ने इस साहित्यिक शैली को भली प्रकार समझा था, अतएव उन्होंने 'यह करो, यह न करो' के उपदेशों की लड़ी गूँथने के बजाय जीवन की सरलता से भरा हुआ काव्य ही प्रस्तुत कर दिया है। गीता को प्राचीन परिभाषा में 'अमृत-तुल्य दूध' कहा गया है। यह दूध ज्ञान की उन बड़ी-बड़ी वेदोप-निषद् रूपी गौओं से दुहा गया था, जिन्होंने सैकड़ों वर्षों तक भारतीय ज्ञान-कांतार में स्वच्छंद विचरण और पोषण प्राप्त किया था। इस देश में जो तत्व-चिंतन हुआ वह वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शन आदि ग्रंथों में और लोक के मन में भरा हुआ था। उसके एकत्र स्पष्ट कथन की आवश्यकता थी, जिससे यह ज्ञात हो सके कि परिभाषाओं के घटाटोप के मूल में सच्चा अर्थ क्या है। गीता इस प्रकार के स्पष्ट-निश्चित कथन का सर्वोत्तम रूप है। जहाँ तक पूर्ववर्ती साहित्य का संबंध है गीता का दृष्टिकोण समन्वय-प्रधान है। दार्शनिक उखाड़-पछाड़ में गीताकार को कोई रुचि नहीं है। उनकी एक ही दृष्टि है--वे ज्ञान को व्यवहार के निकटतम लाकर उसे सरस और जीवन के लिये अधिक उपयोगी बनाना चाहते हैं, उस सब की कुंजी मन है, जो मन अपने आप से जूझ रहा है, उसकी शक्ति बिखरी हुई है, वह अशांत है, वह समाधान नहीं--एक समस्या है। अतएव गीता की दृष्टि में पहली आवश्यकता मन में पड़ी हुई गाँठों को सुलझाना है। प्रत्येक व्यक्ति पहले अपने मन का संस्कार करे--स्वयं अपना मित्र बने, तब वह दूसरों के लिये उपयोगी बन सकता है।

हर एक व्यक्ति को प्रकृति ने इंद्रियाँ, शरीर और मन ये साधन प्रदान किए हैं। इंद्रियों के विषय में कृष्ण का दृष्टिकोण एक शब्द में यह है कि उन्हें 'युक्त' बनाना चाहिए, अर्थात् उचित

मध्यम वृत्ति के अनुसार चलाना चाहिए। न तो त्रिकाल संयम का कनटोप चढ़ाने से इंद्रियाँ वश में आती हैं और न एक दम ढील छोड़ देने से ही। बुद्ध ने भी यह अनुभव किया था। ठीक आहार, ठीक विहार ; ठीक सोना, ठीक जागना, कामों में ठीक प्रवृत्ति—इस मार्ग से मनुष्य इंद्रियों और विषयों के बीच की कशमकश को बहुत अंशों में सुलझा कर मन-बुद्धि के तनाव को कम कर सकता है।

शरीर के विषय में कृष्ण का मत है कि शरीर एक क्षेत्र है, इस क्षेत्र का जो पेचीदा ठाठ है उसे ठीक तरह से पहिचानना, यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। जो इस क्षेत्र को अच्छी तरह जानता है उसे 'क्षेत्रज्ञ' कहा है। अंतःकरण का साक्षी अपना आत्मा प्रत्येक क्षेत्र का क्षेत्रज्ञ है। जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के पारस्परिक संबंध, बलाबल और महत्त्व को जान लेता है और व्यवहार में उससे काम लेता है, वही सच्चा क्षेत्रज्ञ है। शरीर की 'क्षेत्र-संज्ञा' पुरानी वैदिक परिभाषा थी। कहा है—

"अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।"

—ऋग्वेद, १०।३२।७

"जो क्षेत्र को नहीं जानता वह जाननेवाले से पूछता है और उसकी सीख के अनुसार काम करता है।"

बुद्ध ने भी आध्यात्मिक अर्थों के लिये खेत, खेती और किसान के रूपक को स्वीकार करके कई तरह से उसे पल्लवित किया था, किंतु कृष्ण का जो सबसे महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण है वह मन से संबंध रखता है। मन को ठीक करने के लिये उन्होंने जो युक्तियुक्त दृष्टिकोण बताया है, वही गीता-ज्ञान का जगमगाता हुआ हीरा है। मन सबसे मूल्यवान् तत्त्व है, मन सबके भीतर बैठा हुआ अपूर्व यक्ष है। मन को मित्र बनाने से काम चल सकता है। यदि मन के नाम बाकी निकलती रही तो हलके होकर जीवन-यात्रा करना कठिन है। बुद्ध ने भी सब कर्मों के मूल में मन को ही श्रेष्ठ कहा है—

"मनो पुब्बंगमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततोनं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदम्॥"

—धम्मपद

"सब धर्म या अवस्थाएँ पहले मन में उत्पन्न होती हैं, उनमें मन ही मुख्य है, वे मनोमय हैं। यदि हम दुष्ट मन से बोलते या काम करते हैं तो दुःख पीछे-पीछे चलता है, जैसे बैल के पीछे—**पजिया**।"

मन की ठीक स्थिति प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिए? इस विषय में श्रीकृष्ण का अभिमत संक्षेप में यह है कि मन इच्छाओं की भूमि है, कोई ही मन ऐसा होगा जो कामनाओं का लीला-क्षेत्र न हो। कामनाओं को लेकर हम जब कर्म में प्रवृत्त होते हैं तो मन पर एक बोझ रहता है। वैज्ञानिक शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि कामना से भरा हुआ मन तनाव की स्थिति में हो जाता है। यह तनाव हटाना आवश्यक है। तनाव के कारण मन की धारा कुटिल हो जाती है। तनाव मन की—'**ऋजुगति**' को डावाँडोल कर देता है, या दायें-बायें झुका देता है। मन को ऐसी तनाव की स्थिति से बचाना आवश्यक है, तभी हम कर्म को परिशुद्ध बना सकते हैं, नहीं तो कर्म पर स्वार्थ की छाया पड़ जाती है और कर्म बहका हुआ हो जाता है। यह तनाव की स्थिति किस कारण से उत्पन्न होती है, इसका उत्तर यह है कि कर्म करते समय मन जब फल पर जाकर अटकता है, तब कर्म परिशुद्ध नहीं रह जाता। कर्म करने की इच्छा या कामना होना बुरा नहीं, वह तो स्वाभाविक और आवश्यक है, किंतु कर्म-क्षेत्र से बाहर जाकर जब हम उसके फल की लालसा मन में ले आते हैं, तब मन पर बोझ पड़ जाता है और भय, शंका, लोभ, स्वार्थ आदि वृत्तियाँ हमारे समस्त व्यक्तित्व को तनाव से भर देती है। फल के लिये लोलुप न होना यही कर्म करने का सच्चा ढंग है, इसी

का नाम 'निष्काम कर्म' है। कर्म का त्याग करना कर्म-संन्यास नहीं, कर्म के फल की आशा से ऊपर उठ कर कर्म करना यही कर्म-संन्यास है और यही सच्चा कर्म-योग है। कोई कर्म शुरू ही न करे तो क्या वह इतने से ही बड़ा निष्कर्मी बन जायेगा ?

"न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।"

—गीता ३।४

कोई क्षण भर भी तो विना कर्म के रह नहीं सकता। जनक आदि राजर्षियों की लंबी परंपरा में जिन्हें हम आदर्श मानते हैं, सभी ने तो कर्म किया, फिर कर्म से झिझक क्यों? इत्यादि अनेक काव्यमय प्रश्न पूछकर हर एक पहलू से श्रीकृष्ण ने मूल प्रश्न को झकझोरा है। जीवन है तो कर्म भी साथ जुड़ा है। कर्म-त्यागा जाय तो यह लोक ही ठप हो जाय। इससे ज्ञात होता है कि कर्म तो शरीरधारी को करना ही पड़ेगा। जब कर्म के बिना छुटकारा नहीं तो बुद्धि-पूर्वक उसका महत्त्व और उसकी युक्ति का निर्णय किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से गीता संसार के समस्त धार्मिक ग्रंथों में अकेली है, वह कर्म का शास्त्र है। प्राचीन या अर्वाचीन, चाहे जिस कसौटी से कसें, कर्म की आवश्यकता माननी पड़ती है, फिर उसके करने का युक्तियुक्त ढंग जानना भी जीवन का आवश्यक और अनिवार्य प्रश्न बन जाता है। गीता इस प्रश्न का उत्तर है।

कर्म अनंत हैं। एक समय ऐसा था जब यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म मानते थे। अशोक ने धर्मानुशासन को श्रेष्ठ कर्म कहा—

"एस हि सेस्टे कंमे य धंमानुसासनम् ।"

कर्म के प्रकार युगधर्म के अनुसार परिवर्तनशील हैं। देश, काल और व्यक्ति के अनुसार कर्म अनेक प्रकार के हो सकते हैं और रहेंगे, किंतु उन सब की सामान्य विशेषता है, फल की आशा के साथ करनेवाले का संबंध। फल का महत्त्व कर्ता की दृष्टि में जहाँ बढ़ा वहीं कर्म के शुद्ध रूप को ग्रहण लग जाता है। इस दृष्टि से कृष्ण के निष्काम कर्मयोग का जीवन के लिये बहुत मूल्य है।

प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य के लिये इस प्रकार का निष्काम कर्म संभव है? जैसा हमने आरंभ में ही कहा है—'गीताज्ञान मनुष्य के लिये है'। अतएव इस प्रश्न का सच्चा उत्तर यही है कि कर्म करते हुए भी कर्म के तनाव और बोझ से बचने के लिये गीताकार ने जो निष्काम कर्म या कर्म-फल में लिप्त न होने की युक्ति बताई है वह भी मनुष्य के लिये संभव है। सब उसे प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः जीवन में जो कर्म उज्ज्वल हैं, जो कर्म गुणवान् हैं, जो कर्म भव्य हैं, वे इसी ऊँचे धरातल से किये जाते हैं। कर्मी का सौरभ उनके निष्काम गुण की मात्रा पर ही निर्भर है।

दूसरा प्रश्न यह है कि जब कर्म निष्काम धर्म बन जाता है, जब कर्म बिना फल की आशा के किया जाता है, तब समाज और विश्व के संस्थान के साथ मनुष्य की क्या स्थिति होती है? किस कारण से ऐसे व्यक्ति के कर्म में बड़प्पन आ जाता है? इस प्रश्न का जो उत्तर गीता में दिया गया है, वह गीताज्ञान का खिला हुआ पुष्प है। गीता में कई प्रकार की और काव्यात्मक शैली से इसे समझाया गया है। जब मनुष्य फल की इच्छा से ऊपर उठ कर अपने आपको तनाव से मुक्त कर लेता है तो वह प्रकृति के ही विराट् संस्थान का अंग बन जाता है। प्रकृति मनुष्य से बलवान् है, वह जगत् की प्रेरक शक्ति है, सुख-दुःख, शांति-क्षोभ, प्रकृति ही इनकी नियामक है। प्रकृति की स्थिति 'ब्राह्मी स्थिति' है, राग और द्वेष, हानि और लाभ, लोभ और त्याग के प्रभावों से प्रकृति ऊपर है। मनुष्य को भी उसी ब्राह्मी स्थिति के आदर्श के अनुसार अपने आपको ढालना होगा। भारी दुःख हो या सुख हो—दोनों अवस्थाओं में जो समता रख सकता है, वह ब्राह्मी स्थिति के निकट है, उसे 'स्थितप्रज्ञ' कहते हैं।

स्थितप्रज्ञ ही गीताकार का आदर्श व्यक्ति है। ऐसे व्यक्ति हर-एक युग के लिये उपयोगी और आवश्यक हैं। प्रत्येक समाज और जन-समुदाय उन्हें चाहता है। जिस क्षेत्र में ऐसा व्यक्ति काम

करता है उसे ही उलझनों से रहित बनाता है। प्रत्येक संस्कृति, धर्म और दर्शन में युग-युग से जिस प्रकार के आदर्श पुरुष की कल्पना की गई है, उस तरह का आदर्श गीता के स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के गुणों में बहुत कुछ चरितार्थ हुआ है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति मानवमात्र के नैतिक आदर्श की पूर्ति है। हमारे अपने युग में गीता की जो प्रधान व्याख्याएँ हुई हैं, उनमें लोकमान्य तिलक ने तो निष्काम-कर्मयोग को गीता के मथित अर्थ के रूप में समझाने का प्रयत्न किया था एवं महात्मा गाँधी ने स्थित-प्रज्ञ के रूप में गीता के सारांश को समझाने का प्रयत्न किया। दोनों ही अर्थ गीताकार को मान्य हैं और वे एक दूसरे के पूरक हैं। लोक के लिये गीता का उपयोग है। गीताकार की दृष्टि में लोक का बहुत महत्त्व है। वेदव्यास के शब्दों में श्रीकृष्ण को--'लोकविधानवित्' कहा जाय तो ठीक होगा। लोक के विषय में श्रीकृष्ण का बहुत ही सुलझा हुआ और नवीन युग का-सा दृष्टिकोण है--

"लोक-व्यवहार के लिये कर्म करना आवश्यक है, मैं स्वयं इसी दृष्टि से कर्म करता हूँ। कर्म से भाग कर, जीवन के कर्त्तव्यों से मुँह मोड़ कर, अपनी परिस्थितियों से अलग शांति ढूँढ़ना निरर्थक है। वैसी शांति यहाँ है ही नहीं, वह मृगमरीचिका है।" संघर्ष में कर्त्तव्य-पालन से जो समस्थिति मिलेगी वह सच्ची शांति की स्थिति होगी। हम यह मानते हैं कि लोक में सभी कुछ अच्छा नहीं, यहाँ गुण हैं तो दोष भी हैं। हमें लोक के प्रति सहिष्णु बनना होगा। यदि यहाँ सब कुछ हमारी इच्छा के अनुकूल नहीं तो खीझ कर लोक का परित्याग करना अनुचित है। वस्तुतः जैसा कि गोस्वामी जी ने कहा है—

"जड़-चेतन गुन-दोष-मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस-गुन गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार।।"

--रामचरितमानस

कृष्ण ने जगत् के संबंध में वैदिक दृष्टिकोण को ही जो पुराना दार्शनिक मत था, स्वीकार किया है--यह संसार त्रिगुणात्मक है। सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से इसका प्रत्येक अंश नियंत्रित है। सत्-असत् के मेल से विश्व बना है। जगत् की रचना के भीतर ही उसकी त्रिगुणमयी विषमता का ज्ञान भी हमें होता है। संसार की इस प्रकार सरल सुबोध व्याख्या सांख्य-शास्त्र की पुरानी विशेषता थी। वस्तुतः सांख्य शब्द गिनती परक संख्या शब्द से न होकर ज्ञान-परक संख्या शब्द से बना था। त्रिगुणात्मक जगत् का ज्ञान ही सच्चा चक्षु है। चक्षु धातु के स्थान पर 'ख्या' आदेश करके संख्या और उससे 'सांख्य' शब्द की सिद्धि ऐतिहासिक सत्य के अधिक निकट जान पड़ती है। महाभारत में सांख्य ही प्रमुख दार्शनिक दृष्टिकोण है, किंतु सांख्य की परंपरा आरंभ से ही भिक्षु-धर्म को साथ लेकर चली थी। इस कारण से यद्यपि सांख्य के दार्शनिक दृष्टिकोण को गीता में स्वीकार किया गया, किंतु जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण को गीताकार स्वीकार न कर सके। इस विषय में गीताकार ने एक नया और उच्चतर दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और वह 'कर्मयोग' का मार्ग था। गीता में कई स्थानों पर कर्मयोग को केवल 'योग' ही कहा गया है—

"तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्याश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

--गीता ६।४६

इस श्लोक में चार तरह के मार्गों का उल्लेख है—

१. ज्ञान, अर्थात् सांख्य, २. तप, अर्थात् उग्र शरीर-साधना, ३. कर्म, अर्थात् वैदिक कर्मकांड और ४. योग, अर्थात् कर्म-फल का संन्यास या निष्काम कर्म-योग।

ऐतिहासिक दृष्टि से हम जानते हैं कि पहले तीन मार्ग प्राचीन धार्मिक जगत् में प्रचलित थे। कठिन तपश्चर्या से सिद्धि प्राप्त करने के पीछे बुद्ध ने भी बहुत धक्के खाए थे। उस काल के इतिहास में बड़े-बड़े विहंगम तप-साधनों का उल्लेख मिलता है। ज्ञानवादी भिक्षु या सांख्य प्रसिद्ध ही हैं।

यज्ञों पर आश्रित वैदिक कर्मकांड के बारे में जहाँ एक ओर विस्तृत ब्राह्मण और श्रौत साहित्य उपलब्ध है वहाँ स्वयं कृष्ण ने भोग, ऐश्वर्य और स्वर्ग के लिये किये जानेवाले कर्मकांडों का उल्लेख किया है। वैदिक वाणी की यही उस समय सजी हुई फुलवाड़ी (पुष्पितावाक्) थी। कृष्ण ने इन तीनों मार्गों से ऊपर निष्काम कर्मयोग को श्रेष्ठ कहा है, किंतु उनका मौलिक दृष्टिकोण समन्वय प्रधान था, दूसरे मत के केवल निराकरण में उनकी रुचि न थी। सांख्य और वेद इन दोनों की आलोचना वे ऊँचे स्तर से करते हैं।

कृष्ण ने कहा कि सांख्य के त्रिगुणात्मक दृष्टिकोण को और निष्काम कर्मयोग के दृष्टिकोण को जो पृथक् या विरोधी समझते हैं, उनका दृष्टिकोण बच्चों का है, बुद्धिमानों का नहीं। बाल-बुद्धि व्यक्ति को भेद में कुतूहल होता है, किंतु पंडित भेद के मूल में छिपी हुई एकता को देखता है। मिथ्याचार या बाहरी ढोंग को छोड़कर उचित ढंग से यदि सांख्य और योग इन दो में से एक का भी पालन किया जाय तो दोनों का फल मिलता है—

"सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।" —गीता ५.४

वेद के विषय में भी गीताकार ने स्थान-स्थान पर समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न किया है—

"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः ।"

सब वेदों या अंतर्यामी अर्थ या ईश्वर का ज्ञान कराना ही है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद के पुरुष सूक्त में स्पष्ट एक ईश्वर के अनुभव का उल्लेख हुआ है—

"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं सर्वं यच्चभाव्यम् ।"

भूत और भविष्य सब ईश्वर ही हैं। अथवा—

"वेदाहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।"

स्पष्ट रूप से वेदों के सारभूत अध्यात्म-पुरुष का वर्णन करता है। वेद के विषय में यह उच्चतर दृष्टिकोण 'यास्क' के समय में भी पल्लवित हो रहा था, वहाँ कहा गया है कि मंत्रों के द्वारा एक आत्मा का ही गुणगान किया जाता है—

"एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते ।"

इंद्र, अग्नि आदि सब उसी के नाम हैं। वैदिक यज्ञों के संबंध में सजे हुए शब्दों की कृष्ण ने उपेक्षा की और यही उस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी। उपनिषद् भी कह रहे थे—

"अदृढा ह्येते प्लवा यज्ञरूपाः ।"

जब कि गीताकार ब्रह्मज्ञान, ब्राह्मीस्थिति, स्थितप्रज्ञ अवस्था को सच्चा सार मानते हैं, निरुक्त और ब्राह्मण ग्रंथों में हम पढ़ते हैं—"जो अर्थ को नहीं मानता, केवल वेद के शब्द पर ध्यान देता है, वह भारवाही है।" उस समय भारतीय अध्यात्मज्ञान शब्दों के जिस दलदल में फँस रहा था, उससे कृष्ण ने उसे निकाला।

कृष्ण ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण से जिन कई प्रश्नों का समाधान किया, उनमें देवताओं का प्रश्न भी एक था। बहु देवतावाद धर्म का लोकपक्ष है। लोक में अनेक देवताओं की पूजा और विश्वास प्रचलित हैं। लोक को उनमें भक्ति और प्रतीति होती है और संभवतः आगे भी रहेगी। अनेक देवों में न एक अच्छा है, न दूसरा बुरा। वे सभी ईश्वर की विभूति हैं। यह विभूति शब्द पीछे से (पंचरात्र संप्रदाय में) विविध अवतारों के लिये पारिभाषिक ही बन गया था। गीता का 'विभूति-योग' नामक दसवाँ अध्याय ठेठ लोक पर आश्रित है। भूत, प्रेत, यज्ञ, नाग, वृक्ष, पीपल, पर्वत, नदी, समुद्र, मगर, मछली आदि जल के प्रतीक, सूर्य, चंद्र, तारे इस प्रकार का एक बहुमुखी देवतावाद लोक-धर्म के रूप में फैला हुआ था जिसकी जड़ें भूमि के साथ संबंधित थीं। इस धर्म के अस्तित्व का सबसे अच्छा प्रमाण 'साँची' और 'भरहुत' के स्तंभों पर अंकित देवी-देवताओं में मिलता है, जिनमें कितने

ही यक्ष और नाग हैं। महाभारत के समापर्व में यक्ष, नाग और नदी देवताओं की लंबी सूचियाँ मिलती हैं। बौद्धों के 'आटानटीय सुत्तंत' में भी कितने ही यज्ञों के नाम आते हैं जिनकी लोक में मान्यता थी। 'महामायूरी ग्रंथ' में भिन्न-भिन्न स्थानों के यक्षों की सूचियाँ हैं। भारतीय पुरातत्त्व में मणिभद्र, वैश्रवण आदि यक्ष, दधिकर्ण, एलापत्र आदि नाग, एवं नदी, देवताओं की मूर्तियाँ मिली हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि लोक-जीवन की जो वास्तविक सच्चाई थी उसके तत्वों से गीता के दसवें अध्याय की रचना हुई, किंतु उसमें गीताकार का समन्वय-प्रधान दृष्टिकोण मुख्य है। वे कहते हैं कि इस बहुदेवतावाद के भीतर ईश्वर के विराट् स्वरूप का दर्शन हमें करना चाहिए। अनेक विभूतियों के रूप में ईश्वर ही इस लोक में व्याप्त हो रहा है। इस दृष्टि से गीता के दशम अध्याय का ऐतिहासिक महत्त्व बढ़ जाता है। वस्तुतः इस दृष्टिकोण को स्वीकृत और विकसित करके भागवतों ने धार्मिक समन्वय की दिशा में इस देश में बड़ा कदम उठाया। धीरे-धीरे सभी संप्रदायों को यह मत मान लेना पड़ा। ऐतिहासिक कशमकश के भीतर से होता हुआ यह दृष्टिकोण धर्म के विषय में राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही बन गया।

गीता में जो जीवन के प्रति नीतिमत्ता और बुद्धिपूर्वक व्यवहार का दृष्टिकोण है, उसकी कुछ गूंज लोक-साहित्य में भी मिलती है। यह सर्व विदित है कि गीता का उपदेश कुरुक्षेत्र में हुआ। कुरुजन-पद की एक पुरानी कहानी 'कुरुधंम-जातक' के नाम से पाली जातकों के संग्रह में बची रह गई है।[१] उस कहानी का ठाठ कुछ अपूर्व है। उसमें राजा से लेकर रंक तक लोक-जीवन के ११ प्रतिनिधि व्यक्ति लिये गये हैं। वे अपने केंद्र में रहते हुए कठिन और सूक्ष्म शीलधर्म पालने का आदर्श अपने सामने रखते हैं। उनका मुख्य दृष्टिकोण यह है कि शील या गुणों का बाह्य रूप में पालन अधिक महत्त्व का नहीं, मन का भाव विशुद्ध होना चाहिए। यदि मन का भाव बिगड़ा हुआ है तो धर्म या शील आडंबरमात्र है। ये ११ व्यक्ति और इनके धर्म इस प्रकार हैं—

१. राजा	अहिंसा
२. राजमाता	समत्व
३. राजमहिषी	ब्रह्मचर्य
४. उपराजा	स्वामिधर्म
५. पुरोहित	अलोभ
६. रज्जुग्राहक	परदुःख-निवृत्ति
७. सारथी	पशुओं पर दयाभाव
८. श्रेष्ठी	परद्रव्य के विषय में सूक्ष्म विवेक।
९. द्रोणमापक-महामात्य	प्रजानुकंपा
१०. द्वारपाल	निष्ठुरवाक् का परित्याग।
११. वेश्या	कर्त्तव्य से उऋण होना।

यह जातक ११ कहानियों का संग्रह है जो सब समान दृष्टिकोण की परिचायक हैं। जातक की भूमिका में कहा गया है कि बुद्ध के जन्म से पहले ही पुराने पंडितों ने स्त्री-सहित घर में रहते हुए अल्पमात्र भी शील के अतिक्रमण करने में हिचकिचाहट प्रकट की थी। यह भिक्षु-धर्म के मुकाबले में गृहस्थ-धर्म का आदर्श था जो 'कुरुजनपद' के साथ विशेष रूप से संबंधित दिखाया गया है। इन दृष्टांतों का मर्म समझने के लिये एक दृष्टांत पर्याप्त होगा।

"कलिंग के ब्राह्मण अपने देश में वर्षा न होने के कारण 'कुरुजनपद में' शील का आदर्श-ग्रहण करने के लिये भेजे गये। उन्होंने जनपद के श्रेष्ठी के पास पहुँच कर धर्म की याचना की।

[१]. जातक संग्रह भाग ३।

वह भी एक दिन जब धान की बाली निकल आई थी अपने धान के खेत में पहुँचा। देखकर उसने सोचा कि धान को बँधवाऊँगा और धान के पूंजे बँधवाकर मणनी के खंभे के पास रखवा दिए। तब उसे ध्यान आया कि इस खेत में से मुझे राजा का हिस्सा देना था, बिना लगान दिए गए खेत में से ही मैंने धान ले लिए। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ, वह भंग हो गया होगा। उसने यह बात सुन कर कहा—

'हे ब्राह्मणो, इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति, संदेह है, इसलिये मैं उसे आपको सिखाने के योग्य नहीं हूँ। ब्राह्मणों ने कहा—'आपकी चोरी की नीयत नहीं थी, बिना नीयत के चोरी का दोष घोषित नहीं किया जा सकता। कुछ न करने पर भी जब आप इस प्रकार संदेह करते हैं, तब आप किसी की चीज़ कैसे ले सकते हैं? ब्राह्मणों ने उससे शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिया।' इस जातक में कुरुधर्म के विषय में तीन बातें विशेष रूप से ज्ञात होती हैं। प्रथम यह कि कुरुधर्म सारे जनपद का धर्म था। राजा, ऋषि, मुनि, या केवल भिक्षुओं के लिये ही वह मार्ग न था। वेश्या, नौकर-चाकर, सेठ-मुनीम सभी इसका पालन कर सकते थे। यह गीता के—

"स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परांगतिम्।"

—गीता

के अति निकट है।

दूसरी बात यह है कि कुरुधर्म गृहस्थ-जीवन का धर्म था। घर में रहते हुए शीलधर्म पालन सबके लिये करना संभव है और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य कर्म को ही इस धर्म के पालन का विषय बना सकता है।

तीसरी बात यह है कि कुरुधर्म का संबंध स्वर्ग, नरक से न होकर सीधे-सादे नीतिप्रधान जीवन-मार्ग से था। ईमानदारी से भरा हुआ जीवन ही इसकी विशेषता है।

इस कुरुधर्म या गृहपतियों के आदर्श के लिये ही संभवतः लोक में—'कुरुगार्हपतं' यह सार्थक शब्द प्रचलित हो गया था, जिसका उल्लेख 'पाणिनि' ने (लगभग ५०० ई० पू०) अपनी अष्टाध्यायी में किया है। ज्ञात होता है कर्म योग का कुरुधर्म-आदर्श ही कुरुदेश में कहे जानेवाले गीताधर्म के रूप में प्रकट हुआ था। भिक्षुधर्म से पृथक् यह गृहस्थों का जीवनमार्ग था। एक लोक कहानी के रूप में गीता के दृष्टिकोण की यह प्रतिध्वनि कम आश्चर्य-कारक नहीं।

गीता भारतीय जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित रही है। हमारी उदयोन्मुखी राष्ट्रीयता के निर्माण में भी गीता के दृष्टिकोण से सहायता मिली है। गीता-ज्ञान ने प्रेरक शक्ति के रूप में राष्ट्र का मार्ग-दर्शन किया है। यह इस शास्त्र की पर्याप्त प्रशंसा है कि अर्वाचीन जीवन के लिये भी इसकी उपयोगिता में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई।



श्रीमद्भगवद्गीता-महिमा

——:: ० ::——

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते ।
हरि-हिय-कमल-बिहारिनि, सुंदर सु पुनीते ।।
—जय भगवद्गीते ।।

कर्म-सुमर्म-प्रकासिनि, कामासक्ति-हरा ।
तत्त्व-ज्ञान-बिकासिनि, बिद्या-ब्रह्म-परा ।।
—जय भगवद्गीते ।।

निसचल-भक्ति-बिधायिनि, निर्मल मलहारी ।
सरन-रहस्य-प्रदायिनि, सब बिधि सुखकारी ।।
—जय भगवद्गीते ।।

राग-द्वेष-बिदारिनि, कारिनि-मोद सदा ।
भव-भय-हारिनि, तारिनि, परमानंद-प्रदा ।।
—जय भगवद्गीते ।।

आसुर-भाव-बिनासिनि, नासिनि तम-रजनी ।
दैवी सदगुन-दायिनि, हरि-रसिका सजनी ।।
—जय भगवद्गीते ।।

समता-त्याग-सिखावनि, हरि-मुख की बाँनी ।
सकल-सास्त्र की स्वामिनि, स्तुतियँन की राँनी ।।
—जय भगवद्गीते ।।

दया-सुधा-बरखावनि मात-कृपा कीजै ।
हरि-पद-प्रेम-दान करि, अपनों करि लीजै ।।
—जय भगवद्गीते ।।

प्राचीन जैनग्रंथों में कृष्ण-चरित्र

श्री अगरचंद नाहटा

भारतवर्ष में श्रीकृष्ण और राम एवं बुद्ध और महावीर बहुत ही श्रद्धेय महापुरुष माने जाते हैं। प्राचीन ग्रंथों के अनुशीलन से पता चलता है कि वास्तव में इनका व्यक्तित्व असाधारण था। श्रीकृष्ण और राम के चरित्र ने तो लोक-मानस एवं साहित्य पर बड़ा भारी प्रभाव डाला। फलतः लोक-मानस में भक्ति की धारा उमड़ चली। इनका गुण-वर्णन कवियों का एक प्रिय विषय हो गया। कवियों की अलंकारिक भाषा एवं विलक्षण प्रतिभा ने इस दशा में खूब काम किया, अतः श्रीकृष्ण के संबंध में तो इतना विशाल एवं विविध साहित्य का निर्माण हुआ है कि उसकी सूची बनावें तो भी एक स्वतंत्र ग्रंथ बन सकता है। आज तो श्रीकृष्ण के वास्तविक इतिवृत्त का पता लगाना भी बड़ा कठिन कार्य हो गया है।

श्रीकृष्ण के चरित्र-संबंधी जैनेतर साहित्य में सब से प्राचीन ग्रंथ महाभारत है। जिसका उपलब्ध वर्तमान् रूप पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार ईस्वी की पाँचवीं शताब्दी माना जाता है।[1] इसके बाद श्रीमद्भागवतादि में तो कृष्ण-चरित्र बहुत विकसित रूप से उपलब्ध है। अतः इस निबंध में उन्हीं प्राचीन जैन-ग्रंथों का आधार लिया गया है, जोकि एतद्विषयक जैनेतर प्राचीन से प्राचीन ग्रंथों के समकालीन या उनसे प्राचीन हों। जैन-साहित्य में सब से प्राचीन ग्रंथ 'आगम' है, जोकि भगवान् महावीर के कथित कहे जाते हैं। अंततः उनका वर्तमान रूप—लेखन-काल ई० सन् ३५३ होने से उससे पूर्ववर्ती है। इसके परवर्ती ग्रंथों में 'वसुदेव हिंडी' प्रधान हैं, जोकि ४-५ वीं शती का महत्त्वपूर्ण तथा कथा-ग्रंथ है। अतः श्रीकृष्ण के चरित्र का रहस्य जानने एवं तुलनात्मक अध्ययन के लिये ये साधन महत्त्वपूर्ण हैं। आशा है कि जैनेतर विद्वान् मेरे इस प्रयत्न से समुचित लाभ उठावेंगे और जैनागमों के अध्ययन में विशेष रस लेने लगेंगे।

प्रसंगवश यहाँ जैनागमों के महात्म्य पर भी दो शब्द लिख देना आवश्यक समझता हूँ। प्राचीन जैनागम भारतीय प्राचीन संस्कृति, सामाजिक परिस्थिति, रीति-मर्यादा, साहित्य, कला, दर्शन आदि विविध विषयों की जानकारी के लिये महान भांडागार हैं। ऐतिहासिक, साहित्यिक, भाषा-विज्ञान आदि सभी दृष्टियों से उनका बहुत महत्त्व है। इस बात का वास्तविक पता तो जब शोधक विद्वान् इनका गंभीर अध्ययन करने में प्रवृत्त होंगे तभी विदित होगा ; मैंने तो प्रसंगवश केवल निर्देशमात्र कर दिया है। मूल आगमों के साथ उनकी निर्युक्ति, भाषा पूर्ण व टीकाओं में इतनी मूल्यवान् सामग्री भरी पड़ी है कि अनुभवी ही उसका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं। खेद है कि इस ओर हमारे विद्वानों का ध्यान बहुत ही कम गया है।[2]

१. महाभारत के निर्माण काल के विषय में पाश्चात्य विद्वानों का यह मत नितांत भ्रामक है। महाभारत का निर्माण काल ईस्वी सन् के पूर्व ३१०१ वर्ष है, जैसा कि सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत "संस्कृत साहित्य का इतिहास" में स्पष्ट किया गया है।—सं०

२. पचास वर्ष हुए बंगाल के ख्यातनाम विद्वान् 'बंकिमचंद्र' ने बड़ी छानबीन कर 'कृष्ण-चरित' प्रकाशित किया था, खेद है कि विगत पचास वर्षों में वह कार्य और आगे नहीं बढ़ सका। इस ग्रंथ के गुजराती अनुवाद की गवेषणा में 'मनसुखलाल रतनजी भाई मेहता' ने लिखा है कि यदि बंकिम बाबू जैन-साहित्य का उपयोग करते तो उनको तथ्य पाने में अधिक सफलता होती।

श्रीकृष्ण को जैनेतर लोग अवतार रूप से पूज्य मानते हैं, तब जैन उन्हें भावी तीर्थंकर के रूप में पूज्य मानते हैं। अतः जैनागमों में भी उनका महत्त्व कम नहीं है। जैनागमों में जैनों के बाईसवें तीर्थंकर 'नेमिनाथ' का जहाँ भी वर्णन आता है, श्रीकृष्ण को वहाँ उस समय के प्रधान पुरुष के रूप में उल्लिखित किया है। जैनागमों के वर्णनों को पढ़ते हुए सहज यही विश्वास होता है कि श्रीकृष्ण महापुरुष थे। जब कभी भी नेमिनाथ द्वारका आते श्रीकृष्ण उनके वचनों को श्रद्धा से सुनते, उनके त्याग-मार्ग को आदर्श मानते थे। ऐसा होने का एक प्रधान कारण भी था, जिससे जैनागमों के कथन की प्राणामिकता में जोर दिया जा सकता है। वह यह है कि नेमिनाथ उन्हीं के (कृष्ण के पिता वसुदेव के बड़े भाई 'समुद्रविजय' के पुत्र) भाई थे। उनका त्याग महान् था, जिसके कारण श्रीकृष्ण को उनके प्रति विशेष आदर होना स्वाभाविक ही है।

जैनागमों की वर्णनात्मक शैली विस्तार से है। यहाँ उनका सार-मात्र ही दिया जाता है।

श्रीकृष्ण के माता पिता

"सौरियपुर नगर में वसुदेव नामक महार्द्धिक राजा थे, उनके 'रोहिणी' एवं 'देवकी' नामक दो भार्याएँ थीं, जिनमें से रोहिणी से बलराम और देवकी से केशव, अर्थात् कृष्ण का जन्म हुआ था।"[1]

द्वारकानगरी

उस समय में "द्वारका" नगरी बारह योजन (९७ मील) लंबी और नव योजन (७२ मील) चौड़ी (विस्तारवाली) थी। वह धनपति (कुबेर) की बुद्धि-द्वारा निर्मित स्वर्ण के प्राकारवाली, नानाविधि पाँच रंग के मणिमय कांगरों से सुशोभित मनोहर, अलकापुरी के समान सुंदर प्रमुदित क्रीड़ावाली, प्रत्यक्ष देवलोक रूप प्रसन्नता प्रदायक, दर्शनीय अभिरूप रमणीय थी।

रैवतपर्वत

उपरोक्त द्वारकानगरी के बाहर, उत्तर-पश्चिम भाग में 'रैवत' नामक पर्वत था। वह ऊँचाई में गगन-तल का अवलंबन कर रहा था, जहाँ नाना-विधि वृक्ष, गुल्म-लता, वल्लियों से अभिराम, हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, मैना, साल, कोकिल, आदि पक्षी-कुलों से व्याप्त, तालाब, झरने, पर्वत-शिखर से जल का प्रचुर मात्रा में प्रपात, अप्सराओं, देवसंघ, विद्याधरों के समूह ऊपर से नीचे उतर रहे हैं—क्रीड़ा कर रहे हैं। दशार्ह वीर, पुरुषतिलक जहाँ बहुधा पधारते हैं। ऐसा वह पर्वत शोम्य, प्रियदर्शन स्वरूप प्रसन्नता-दायक एवं प्रतिरूप था।

नंदनवन

उस रैवत पर्वत के समीप ही 'नंदनवन' था जिसमें सर्व ऋतुओं में पुष्पादि उत्पन्न होने से दर्शनीय था।

उस द्वारका नगरी में श्रीकृष्ण—वासुदेव राज्य करते थे। उनके समुद्रविजयादि १० दशार्ह, बलदेवादि ५ महाबीर, प्रद्युम्नादि ३१।२ क्रोड़ कुमार, सांवादिक ६० हजार दुर्दांतकुमार, महासेनादि ५६ हजार, बलवान् वीरसेनादित् २१ हजार वीर पुरुष, उग्रसेनादि १६००० हजार राजा, रुक्मिणी आदि १६००० रानियाँ, अनेकों गणिकाएँ एवं और भी बहुत से राजेश्वर, श्रेष्ठि, सेनापति, तलवर, माड़ाविय, कौटुंबिक एवं सार्थवाह वहाँ रहते थे। श्रीकृष्ण द्वारका नगरी एवं वैताढच पर्वत से सागर-पर्यंत दक्षिण (अर्द्ध) भारत का आधिपत्य करते रहते थे।

अरिष्टनेमि का आगमन

एक बार 'अरिष्टनेमि' भगवान् १० धनुष के शरीर वाले द्वारका नगरी में—समवसरे ; परिषदा वंदनार्थ आए। भगवान् का आगमन सुनकर श्रीकृष्ण बहुत हर्षित हुए और उनका बड़ा सत्कार किया।

१. उत्तराध्यायन सूत्र अध्यापन २२ की प्रथम गाथा।

श्रीकृष्ण के जीवन से पांडवों एवं द्रौपदी का चरित्र भी संबंधित है, अतः 'ज्ञातासूत्रानुसार' उसे भी यहाँ दे दिया जा रहा है।

द्रौपदी-चरित्र

(द्रौपदी का जन्म एवं विवाह)

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के पांचाल देश में कांपिल्यपुर नगर था। वहाँ के नृपति 'द्रुपद' के 'चुलणी' नाम की रानी थी। उसके 'धृष्टार्जुन' नामक (युवराज) पुत्र एवं द्रौपदी' नामक पुत्री थी। द्रौपदी के यौवनावस्था-प्राप्त होने पर द्रुपद राजाने स्वयंवर मंडप की रचना की एवं द्वारका के श्रीकृष्ण समुद्रविजयादि, हस्तिनापुर के पाँचों पांडव—युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, दुर्योधनादि १०० भ्राता, गांगेय, विदुर, द्रौण, जयद्रथ, शकुन क्लीव, अश्वथामा, चंपा नगरी के कर्ण अंगराज सल्यनंदि, सोक्तिमती नगरी के राजा शिशुपाल दमघोषादि ५०० पुत्रों के साथ, हस्तिशीर्ष नगर के दमदंत राजा, मथुरा के धरराजा, राजगृह के राजा जरासंध के पुत्र सहदेव, कौडिन्य नगर के भीष्मक पुत्र रुप्पि राजा, विराट् के कीचक राजा को १०० भाइयों के साथ, एवं अवशेष ग्राम, नगरों के राजाओं को (द्रौपदी के स्वयंवर में पधारन के लिये) आमंत्रणार्थ दूत भेजे। आमंत्रण पाकर कृष्णादि बहुत से राजा वहाँ पधारे। द्रुपद राजा ने गंगा नदी के पास अनेक स्तंभोंवाला सुंदर स्वयंवर-मंडप बनवाया। कृष्णादि अतिथियों के ठहरने के लिये अतिथि-गृह बनवाये गये थे। चारों प्रकार के आहार, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारादि से वासुदेवादि की भक्ति की।

नियत समय में स्वयंवर की उद्घोषणा की जाने के बाद सभी राजागण स्वयंवर में आये। द्रौपदी भी आई। वहाँ से दासियों के साथ उपस्थान शाला में जाकर ४ घंटवाले अश्वरथ पर स्वयंवर मंडप में प्रवेश कर द्रौपदी ने वासुदेवादि सब को प्रणाम किया। सुरूपा दासी न बाँए हाथ में स्वच्छ दर्पण रखा, जिसमें राजाओं के रूप-प्रतिबिंबित हों और दाहिने हाथ से उनका परिचय कराने लगी। प्रथम यादव-वंशीय १० दशार्हों आदि का, फिर उग्रसेन आदि के गुणादि वर्णन किये। द्रौपदी वह सुनती हुई जब पाँचों पांडवों के पास आई तो पाँचों पांडवों के गले में पंचवर्ण वाली माला डाल दी और कहने लगी मैंने इन पाँचों पांडवों को बरा। यह सुनकर कृष्ण—वासुदेवादि हजारों राजाओं ने बड़े जोर के शब्दों में कहा कि हे द्रौपदी, तूने अच्छा बरा। ऐसा कहकर वे अपने-अपने आवासों में चले गये। इधर धृष्टार्जुन कुमार ४ घंटवाले अश्वरथ में द्रौपदी एवं पाँचों पांडवों को बैठा कर अपने भवन में लाया। द्रुपद राजा ने द्रौपदी के साथ पाँचों पांडवों को पट्ट पर बैठा कर श्वेत, पीत कलशों से स्नान कराया। अग्नि-होम कराके पाँचों पांडवों के साथ द्रौपदी का पाणिग्रहण करवाया। द्रुपद राजा ने प्रतिदान में ८ करोड़ हिरण्य, प्रेषणकारी दासियाँ एवं विपुल धन एवं कनक दिया। वासुदेवादि आगत राजाओं को अशनादि से सत्कृत व संमानित कर विर्सजित किया। उस समय पांडु राजा ने वासुदेवादि राजाओं से प्रार्थना की कि हस्तिनापुर में पाँचो पांडव एवं द्रौपदी का कल्याणकारी उत्सव होगा, अतएव कृपा कर आप सब उसमें संमिलित हों। पांडु राजा के आग्रह से वासुदेवादि हस्तिनापुर पधारे। शुभ महूर्त में पाँचों पांडवों को द्रौपदी के साथ पट्ट पर बैठा कर पूर्ववत् उत्सव किया। तदंतर पाँचों पांडव द्रौपदी के साथ बारी-बारी से भोग भोगते रहने लगे।

द्रौपदी-अपहरण

एक समय पांडुराजा, पाँचों पांडव, कुंती एवं द्रौपदी आदि परिवार-सहित अंतःपुर में सिंहासन पर बैठे हुए थे। उस समय कच्छुल्ल नारद वहाँ पधारे। नारदजी को आते देख पाँचों पांडव, कुंती एवं पांडुराजा ने खड़े होकर वंदन, नमस्कार करते हुए आसन देकर अभ्यर्थना की। तब नारदजी जल से पृथ्वी को छिड़क दर्भासन पर बैठे और पांडुराजा से कुशल-क्षेम पूछा। नारदजी का पांडुराजा ने आदर सत्कार किया, पर द्रौपदी ने उनका सत्कार नहीं किया। अतः नारद ने अपने असंमान से रुष्ट होकर द्रौपदी को विपत्ति में डालने का निश्चय किया और

वहाँ से वे विद्याधर-गति से धात की खंडवर्ती 'अमरकंदा' नगरी में पधारे। वहाँ पद्मनाभ राजा जिनके ७०० रानियाँ एवं सुनाम युवराज कुमार था, अंतःपुर में रानियों के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे। नारद को आते देख पद्मनाभ ने भी सत्कार किया और गर्विष्ठ होकर राजा ने पूछा कि क्या आपने मेरी रानियों के सदृश रुपवान् स्त्रियों का समुदाय कहीं देखा है। नारदजी ने मृदु हास्य पूर्वक कहा—हे पद्मनाभ, पांडवों की पत्नी द्रौपदी के पैर के अंगूठे की समता करनेवाली भी तुम्हारी रानियों में कोई नहीं है। वह ऐसी अद्भूत रूपवती है। इन वचनों से उत्कंठित होकर पद्मनाभ ने अपने परिचित मित्रदेव का आराधन किया, देव ने द्रौपदी के सती होने की बात कही, पर अंत में पद्मनाभ के अनुरोध से युधिष्ठिर के साथ सोई द्रौपदी को अवस्वापिनी निद्रा देकर वहाँ से उठाई और पद्मनाभ के भवन में लाके रख दी। जागृत होने पर द्रौपदी अपरचित स्थान में अपने को देख कर विस्मित हुई। उसी समय पद्मनाभ ने उपस्थित होकर अपना कुत्सित अभिप्राय विदित किया। द्रौपदी ने उससे ६ महीने की अवधि माँगी और तप करना प्रारंभ कर दिया।

इधर थोड़ी देर बाद युधिष्ठिर ने जागृत होकर द्रौपदी को वहाँ नहीं देख चारों ओर तलाश शुरु की। फिर भी न मिलने पर उसने सारा वृतांत पांडु राजा को कहा, उन्होंने भी द्रौपदी का पता लगानेवालों को विपुल धन देने की घोषणा करवाई। फिर भी कोई पता न लगने पर उन्होंने कुंती को श्रीकृष्ण के पास भेजकर द्रौपदी का पता लगाने का निवेदन किया। कुंती ने द्वारका जाकर श्रीकृष्ण को सारी घटना कहते हुए द्रौपदी के अन्वेषण के लिये कहा। कृष्ण जी ने भी आश्वासन देकर कुंती को विदा कर उद्घोषणा करवाई, पर पता नहीं चला।

द्रौपदी-अनुसंधान एवं आनयन

एक बार नारदजी के आने पर कृष्ण ने द्रौपदी के संबंध में उनसे पूछा, उन्होंने कहा—अमरकंश के राजा पद्मनाभ के भवन में द्रौपदी जैसी कोई स्त्री देखने में तो आई थी। कृष्ण ने आंतरिक रहस्य जानकर नारदजी से कहा—यह करतूत आप ही की प्रतीत होती है। अस्तु, नारद के चले जाने पर कृष्ण ने अपने दूत को हस्तिनापुर भेजा और पांडु राजा से पाँचों पांडवों को सेना-सह वैतालिक समुद्र के पास भेजकर वहाँ अपनी प्रतीक्षा करने को कहलवाया। इधर से श्रीकृष्ण भी ससैन्य नियत स्थान पर पहुँच कर पांडवों के साथ रथों-सह अमरकंकड पहुँचे। राजनीति के अनुसार श्रीकृष्ण ने सारथी को पद्मनाभ के पास दूत के रूपमें भेजा। उसके समझाने पर भी पद्मनाभ के न मानने पर युद्ध प्रारंभ हुआ। प्रथम युद्ध पांडवों ने किया और वे हारे। भाग कर पांडवों ने सारा हाल कृष्ण से कहा। तत्काल कृष्ण रथारूढ़ हो युद्ध में पधारे। सर्व प्रथम शंखनाद किया। उसके शब्द-श्रवण मात्र से पद्मनाभ की तिहाई सेना भाग खड़ी हुई, फिर धनुष के टंकार से तिहाई सेना और भाग खड़ी हुई, तब हताश हो पद्मनाभ ने अपनी राजधानी में घुसकर नगरके द्वार बंद कर दिये। यह देखकर श्रीकृष्ण नगर के समीप आये और 'नृसिंह' रूप धारण किया और बड़े शब्दों के साथ पावों से आस्फालन करने लगे। इससे नगरी में मकान आदि गिरने लगे। अतः नगर में हा-हाकार-सा मच गया। इससे भयभीत हो पद्मनाभ द्रौपदी की शरण में आया। द्रौपदीने कहा—हे देवानुप्रिय (मूर्ख), तुमने पहिले नहीं जाना कि तुम कृष्ण से बैर बाँध रहे हो। अब भी अविलंब स्नान कर भीगी साड़ी पाँव तक पहिन, अंतःपुर की स्त्रियों एवं रत्नों के साथ मुझे आगे रख कर कृष्ण के चरणों में चलके उनकी शरण लो। वे उत्तम पुरुष हैं, संभव है कि ऐसा करने पर तुम्हें जीता छोड़ देंगे। पद्मनाभ ने अन्य उपाय न देख द्रौपदी के कथनानुसार वासुदेव के चरणों में पड़ कर कहने लगा कि "कृपया मेरी भूल क्षमा करिये, यों कहते हुए उसने द्रौपदी को कृष्ण के सुपुर्द की। कृष्ण ने भी उपालंभ देते हुए कहा, असमय की मृत्यु के प्रार्थी हे पद्मनाभ, तूने मेरी भगिनी (सदृश) द्रौपदी का हरण करते हुए तनिक भी विचार नहीं किया, जा चला जा। तदनंतर कृष्ण ने द्रौपदी को रथ में बैठा कर पांडवों के सुपुर्द की। पाँचों पांडव एवं द्रौपदी के साथ लवण समुद्र को पार कर जंबू द्वीप

के भरत क्षेत्र में पधारे। गंगा के समीप आकर कृष्ण ने पांडवों से कहा कि तुम गंगा के उस पार पहुँचो, मैं जरा सुस्थित देव से मिल के आता हूँ।

श्रीकृष्ण के चरित्र की अन्य घटनाएँ

जैनागमों के अनंतर कृष्ण-चरित संबंधी महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंमें 'वसुदेव हिंडी' सबसे प्राचीन एवं उल्लेखनीय ग्रंथ है, जिसकी रचना 'संघदास' गणिवाचक ने ५ वीं शदी के लगभग की है। उक्त ग्रंथ में प्रधानता तो कृष्ण के पिता वसुदेव के १०० वर्षों तक परिभ्रमण कर अनेक विवाह करनेके वृतांत की है, पर कृष्ण, उनकी रानियों व पुत्रादि का भी उसमें अच्छा वर्णन पाया जाता है। इस ग्रंथ के अनुसार श्रीकृष्ण का जन्म हरिवंश यादव कुल में हुआ था। इस वंश में एक 'हरि' नामक राजा हुआ उसकी रानी का नाम हरिणी था। इसी हरि राजा का वंश आगे चलकर 'हरिवंश' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

हरि के वंश में एक 'यदु' नामक राजा हुए। यदु के नामसे ही यादव प्रसिद्ध हुए। यदु के वंश में 'शौरि' और 'वीर' राजा बड़े भ्रातृ-प्रेमी हुए, जिनमें से शौरि ने शौरीपुर बसाया और वीर ने सौवीर। सौवीर के अंधकवृष्णि और वीर के भोजवृष्णि ये दो पुत्र हुए। इनमें से अंधकवृष्णि के भद्रा देवी से समुद्रविजय अक्षोभ, स्तिमिति, सागर, हिमवंत, अचल, धरण, पूरण, अभिचंद्र और वसुदेव ये १० पुत्र एवं कुंती एवं मद्री दो पुत्रियाँ हुई और भोजवृष्णि के पुत्र उग्रसेन हुआ, जिसके बंधु, सुबंधु, कंस आदि पुत्र हुए।

प्रस्तुत ग्रंथ में उपर्युक्त वसुदेव के पूर्वभव व अनेक कन्याओं से विवाह के वृतांत के पश्चात् कृष्ण की माता देवकी से विवाहादि का उल्लेख आता है।

मृतिकावलि के राजा देवक के देवकी नामक पुत्री थी। उससे विवाह करके वसुदेव वापिस मथुरा पधारकर कंस, जो कि उनका बाल मित्र था—के यहाँ रहने लगे। एक बार कंस ने मुनि-वचन से अपनी मृत्यु देवकी के सातवें गर्भ से होना ज्ञात कर वसुदेवजी की प्रसन्नता के प्रसंग में उनसे देवकी के सात गर्भों की याचना की, उन्होंने भी सरलभाव से (मूल रहस्य को न जानकर) उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। देवकी से इसकी चर्चा होने पर उसने अतिमुक्त मुनि के वचन का सारा वृतांत वसुदेवजी को बतलाया। इससे वसुदेवजी को भी बड़ा पश्चाताप हुआ, पर उन्होंने अपने बचन-प्रतिपालनार्थ 'देवकी' के ६ गर्भ-जात पुत्रों को कंस को समर्पित कर दिये और कंस ने उन्हें मार डाला। इसके पश्चात् देवकी के गर्भ में कृष्ण अवतरित हुए। इससे उसने सात महास्वप्न देखे। अतः उसको भावी महापुरुष जान कर देवकी ने वसुदेव से अनुरोध किया कि जिस किसी प्रकार भी इस गर्भ की रक्षा कीजिये। दैवयोग से प्रसव के समय कंस के प्रेषित कंचुकी (विश्वासी पहरेदार) गाढ़ निद्रा में सो गये। इधर कृष्ण का जन्म हुआ, वसुदेव बालक को लेकर यमुना पर जाने लगे। उस समय चंद्र श्रवण नक्षत्र के योग में था। बालक को ले जाते हुए को उग्रसेन ने पूछा कि इस अद्भुत बालक को कहाँ ले जा रहे हो। वसुदेव ने कहा इसके प्रभाव से आप पुनः राजा होंगे। अतः इस बात को गुप्त रखिये। आगे जाने पर यमुना नदी ने भी मार्ग दे दिया। अतः उसे पारकर ब्रज—गोकुल में, वसुदेव पहुँचे। वहाँ नंद गोप की पत्नी यशोदा के थोड़े समय पूर्व ही कन्या उत्पन्न हुई थी। वसुदेव ने कुमार को उसे सोंपा और कन्या को स्वयं लेकर देवकी को सोंप दी और तब वसुदेव शीघ्र ही बाहर चले गये। इसी समय कंस की परिचारिकाओं की निद्रा भंग हुई और कन्या होने की कंस को खबर दी गई। कंसने उसकी नाक काट के उसे नाक हीन बना दी।

कुछ समय बाद गौ-पूजा के बहाने से पुत्र के निरीक्षणार्थ देवकी ब्रजमें गई। उसी समय से गौ-पूजा की परिपाटी चालू हो गई। इस प्रकार समय-समय पर देवकी ब्रज में जाकर कृष्ण को खिलाने लगी। इधर कंस ने नैमित्यक से अपने शत्रु के संबंध में पूछा तो उसने—ब्रज में वृद्धि पा रहा है, बतलाया। कंस ने कृष्ण को मारने के उद्देश्य से—यक्षोंको आदेश दिया कि वे नंद गोप के गोकुल में पहुँचें और गधे, घोड़े खुले छोड़ देवें। तदनुसार उनके खुले छोड़ने पर वे लोगों को कष्ट देने लगे। इससे

कृष्ण ने उनको मार डाला। कृष्ण के कलाभ्यास के लिये वसुदेव ने संकर्षण उपाध्याय को वहाँ भेजा। कृष्ण ने उससे कलाओं का अभ्यास किया।

कंस ने अपना पहला प्रयत्न विफल गया देख देवाधिष्ठित धनुष सत्यभामा के गृहमें रखवा कर उद्घोषणा करवाई कि जो इस धनुष को चढ़ावेगा उसके साथ सत्यभामा का विवाह किया जायगा। इस सूचना को पाकर सत्यभामा से विवाह करने का इच्छुक 'अनाधृष्टि कुमार' के व्रज में आने पर बलदेव एवं कृष्ण उनके साथ हो गये। मथुरा पहुँच कर अनाधृष्टि धनुष को चढ़ाने में असफल रहे, तब कृष्ण ने उसे चढ़ा दिया। अनाधृष्टि ने वसुदेव को जाकर कहा मैंने धनुष चढ़ाया है। वसुदेवजी ने कहा अच्छा किया। पूर्व उद्घोषणानुसार धनुष चढ़ानेवाले से सत्यभामा का विवाह होगा। वसुदेव हिंडी का प्रथम खंड वर्तमान में यहीं तक उपलब्ध होता है, अतएव पूर्ति के लिये उसे आचार्य हेमचंद्र के त्रिषष्टि शाला का पुरुष चरित[1] से यहाँ दे दिया जाता है।

आचार्य हेमचंद्र ने कृष्ण की जन्म-तिथि, गोकुल में बाल-लीला व कृष्ण के साथ गोपियों का बलदेव को भेजना, प्रेम होना, शकुनी और पूतना को मारना, कंस के प्रेषित अरिष्ट बैल, केशी अश्व, खर और मेष को मारना, धनुष चढ़ाने का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वसुदेव ने अनाधृष्टि को कहा कि यदि तुमने धनुष चढ़ाया है तो शीघ्र यहाँ से चला जा, अन्यथा तुम्हें कंस मरवा देगा। इससे भयभीत होकर वह कृष्ण के साथ गोकुल आया व कृष्ण को वहाँ छोड़ कर स्वयं गौरीपुर चला गया।

कंस ने इस दावपेंच में भी अपनी विफलता देख कर मल्लयुद्ध की उद्घोषणा करवाई, जिसे सुनकर बलराम ने कृष्ण से कहा चलो, मल्लयुद्ध मथुरा चलकर देख आवें। बलराम ने यशोदा को स्नानादि के लिये गरम जल तैयार करने के लिये कहा, पर अन्य कार्य में व्यस्त रहने के कारण उसने देरी कर दी। तब बलराम ने यशोदा से कहा कि तुम मेरे भाई का पालन करने से रानी हो गई हो क्या? क्या तू अपना दासीपन भूल गई? कृष्ण अब तक यशोदा को अपनी सगी माता समझ रहे थे। अतः बलराम का यह बचन उन्हें बहुत अखरा। कृष्ण के साथ यमुना में स्नान करने को जाते हुए रास्ते में बलराम ने सारा वृतांत बतलाते हुए यशोदा से उनका वास्तिविक संबंध प्रगट किया। कृष्ण ने बलदेव को कंस के अन्याय व अपने ६ भ्राताओं के मारने का वृतांत ज्ञातकर तत्काल कंस को मारने की प्रतिज्ञा की यमुना में स्नान करते हुए कालियनाग को फुंकार करते हुए देख कृष्ण ने कमल की नाल के सदृश उसको पकड़ कर ऊपर स्वयं चढ़ बैठे। उसका दमन कर दोनों भ्राता मथुरा के द्वार पर पहुँचे तो वहाँ 'पद्मोत्तर' व 'चंपक' नामक दो हाथी उपद्रव मचा रहे थे। अतः पहले को कृष्ण ने और दूसरे को बलदेव ने मार डाला।

तदनंतर दोनों भाई कंस के मल्लयुद्ध के स्थान पर पहुँचे। कंस की आज्ञा से 'चाणूर मल्ल' कृष्ण से मल्ल युद्ध करने लगा, और 'मुष्टिक' बलराम से युद्ध करने लगा। अंत में दोनों भाइयों ने दोनों मल्लों को मारकर धराशायी कर दिया। यह देखकर कंस ने कृष्ण बलराम को पकड़ने के लिये सेवकों को आज्ञा दी। तब कृष्ण ने कंस के मस्तक पर पैर रखकर उसे मार डाला। तदनंतर कंस की रानी वहाँ से राजगृह जाकर रुदन करते हुए अपने पिता जरासंध से सारा वृतांत कहा। पिता ने आश्वासन देते हुए कृष्णादि यादवोंको सपरिवार मारने को कहा। सोमक राजा के द्वारा जरासंध ने समुद्रविजयी को कहलाया कि कंस के द्रोही राम व कृष्ण को मुझे सोंप दो, पर समुद्रविजयी इसे कैसे स्वीकार करते। सोमक ने जरासंध के सेना, पराक्रमादि का भय बतलाया तो कृष्ण ने साफ कह दिया कि पिता के पास पुत्रों की याचना करते जरासंध व तुम्हें शर्म नहीं आती, जावो अब से जरासंध हमारा स्वामी नहीं, कंस के समान शत्रु है। हमारे भ्राताओं को कंस ने मारा, यह हम अभी भूले नहीं हैं।

कृष्ण और अनाधृष्टि से तिरस्कृत हो सोमक ने जरासंध के पास जाकर सारा वृतांत कह सुनाया।

१. जैन-धर्म प्रसारक सभा भावनगर से इसका गुजराती अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

इधर उग्रसेन राजा ने अपनी सत्यभामा कन्या को कृष्ण से विवाह दी। सोमक के जाने के बाद दशार्हों ने इकट्ठे होकर कौष्टुकि नैमित्तिक से पूछा कि अब त्रिखंडपति जरासंध से हमारा विग्रह खड़ा हुआ है कहो, इसका क्या परिणाम होगा। नैमित्तिक ने कहा—"राम और कृष्ण थोड़े समय में उसे मारकर त्रिखंड-पति बनेंगे। फिर भी आप लोग पश्चिम दिशा के समुद्र-तट की ओर चले जावो और जहाँ सत्यभामा के युगलिक उत्पन्न हो वहीं नगर बसा के रहो।" कौष्टिक के वचन पर विश्वास होने से समुद्रविज-यादि ग्यारह कुलकोटि के साथ मथुरा से रवाना हो शौरीपुर आये और वहाँ से पाँच कुल कोटि यादवों को साथ ले उन्होंने पश्चिम समुद्र की ओर प्रयाण कर दिया।

इधर जरासंध सोमक से सर्व वृतांत जानकर क्रोधित हुआ, इसी समय उसके पुत्र काल-कुमार ने कहा कि यादव हमारे सामने क्या हैं, मुझे आज्ञा दीजिये मैं उन्हें समुद्र, अग्नि व आकाश में भी होंगे तो पकड़ के ले आऊँगा। जरासंध ने ५०० राजाओं की विशाल सेना के साथ कालकुमार को चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। तदनुसार कालकुमार ने यादवों का पीछा किया। चलते-चलते विंध्या-चल के समीप पहुँचने पर यादव थोड़ी दूर रह गये, तब यादवों की कुल देवी ने कालकुमार को छल द्वारा वहीं भस्म कर दिया। इससे यादव निर्विघ्न आगे बढ़े और सत्यभामा के युगलिक उत्पन्न होने के स्थान पर ठहर गये। युगलिक पुत्रों का नाम 'भानु' और 'भ्रामर' रखा गया। कृष्ण ने स्नान कर 'अट्ठम तप' द्वारा लवण समुद्र के अधिष्ठाता सुस्थित देव का आराधन किया। उसने प्रसन्न होकर कृष्ण को 'पांचजन्य' शंख व राम को 'सुघोष' शंख देते हुए अपने को स्मरण करने का कारण पूछा। कृष्ण ने नगर बसाने के लिये प्रार्थना की। तब देव ने इंद्र से निवेदन किया। इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने १२ योजन लंबी ९ योजन चौड़ी रत्नमयी द्वारका नगरी बसाई। कुबेर ने कृष्ण को पीतांबर, नक्षत्र माला, हार, मुकुट, कौस्तुभमणि, शार्ङ्गधनुष, अक्षय वाणवाले भाथे, नंदक खंग, कौमोदकी गदा, गरुड़ध्वज रथ और राम को नील वस्त्र, लाल ध्वजादि दिये। कृष्ण ने दारुक नामक सारथि वाले रथ में बैठ कर द्वारका में प्रवेश किया। यादव अब वहाँ सुखपूर्वक रहने व बढ़ने लगे।

त्रिषष्ठी सलाका पुरुष चरित में इसके पश्चात् कृष्ण के विवाहादि का उल्लेख आता है, वह वर्णन वसुदेव हिंडी में भी आता है।

बलराम के 'रेवती' नामक पटरानी थी, जो उसके मामा 'रेवत' की पुत्री थी। कृष्ण के उग्रसेन की पुत्री सत्यभामा प्रिय पटरानी थी। समवायांग सूत्र में भी कृष्ण की आठ पटरानियों के नाम हैं, यथा—

१. रिंटपुर के राजा रुधिर की पुत्री 'पद्मावती' जिसको स्वयंवर-मंडप से श्रीकृष्ण ने हरण कर के विवाह किया था।
२. सिंधु देश के मेरु राजा की पुत्री 'गौरी'।
३. गांधार-जनपद के राजा नग्नजित की पुत्री 'गांधारी'।
४. सिंघल द्वीप के राजा हिरण्यलेस की पुत्री 'लक्ष्मणा'।
५. अराकरी नगरी के राजा राष्ट्रवर्धन की पुत्री 'सुसीमा'।
६. गगनंदन नगर के विद्याधर राजा की पुत्री 'जांबवती'।
७. विदर्भ जनपद के कुंडिनपुर नगर के राजा भेषक की पुत्री 'रुक्मिणी'।

रुक्मिणी का संबंध रुक्मिणी के भाई रुक्मी ने दमघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ निश्चित कर दिया था, पर रुक्मिणी की बुआ और रुक्मिणी कृष्ण के साथ विवाह करना चाहती थी। अतः उनके द्वारा कृष्ण को सूचना देने पर विवाह के अवसर पर द्वारका से श्रीकृष्ण और बलराम कुंडिनपुर आकर रुक्मिणी का हरण करके ले जाने लगे तब रुक्मिणी के भाई रुक्मी ने श्रीकृष्ण-बलराम के साथ घोर युद्ध किया और उनसे परास्त हो गया। तदनंतर श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका के समीप पहुँचे तो यक्षों ने उनका विवाह संबंध कर दिया। इस प्रकार सत्यभामा के पश्चात् उपर्युक्त सात कन्याओं से पाणिग्रहण कर इन आठों को श्रीकृष्ण ने पटरानी-पद पर आसीन कर दिया।

इसके पश्चात् वसुदेव हिंडी में भी श्रीकृष्ण के पुत्रों के जन्म होने की कथा है, जिसमें रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न के प्रथम उत्पन्न होने, उसके हरण, शोध, पुनर्मिलन, चमत्कार दर्शन, रुक्मी की पुत्री वैदर्भी से विवाहादि का वृतांत जो कि वसुदेव हिंडी से संक्षेप में दिया जाने पर भी कृष्ण-चरित्र की महत्त्व-पूर्ण एक घटना बाकी रह जाती है। अतः उसे 'त्रिषष्ठी सलाका पुरुष चरित' से संक्षेप में यहाँ देकर लेख समाप्त किया जाता है। वह घटना यह है—

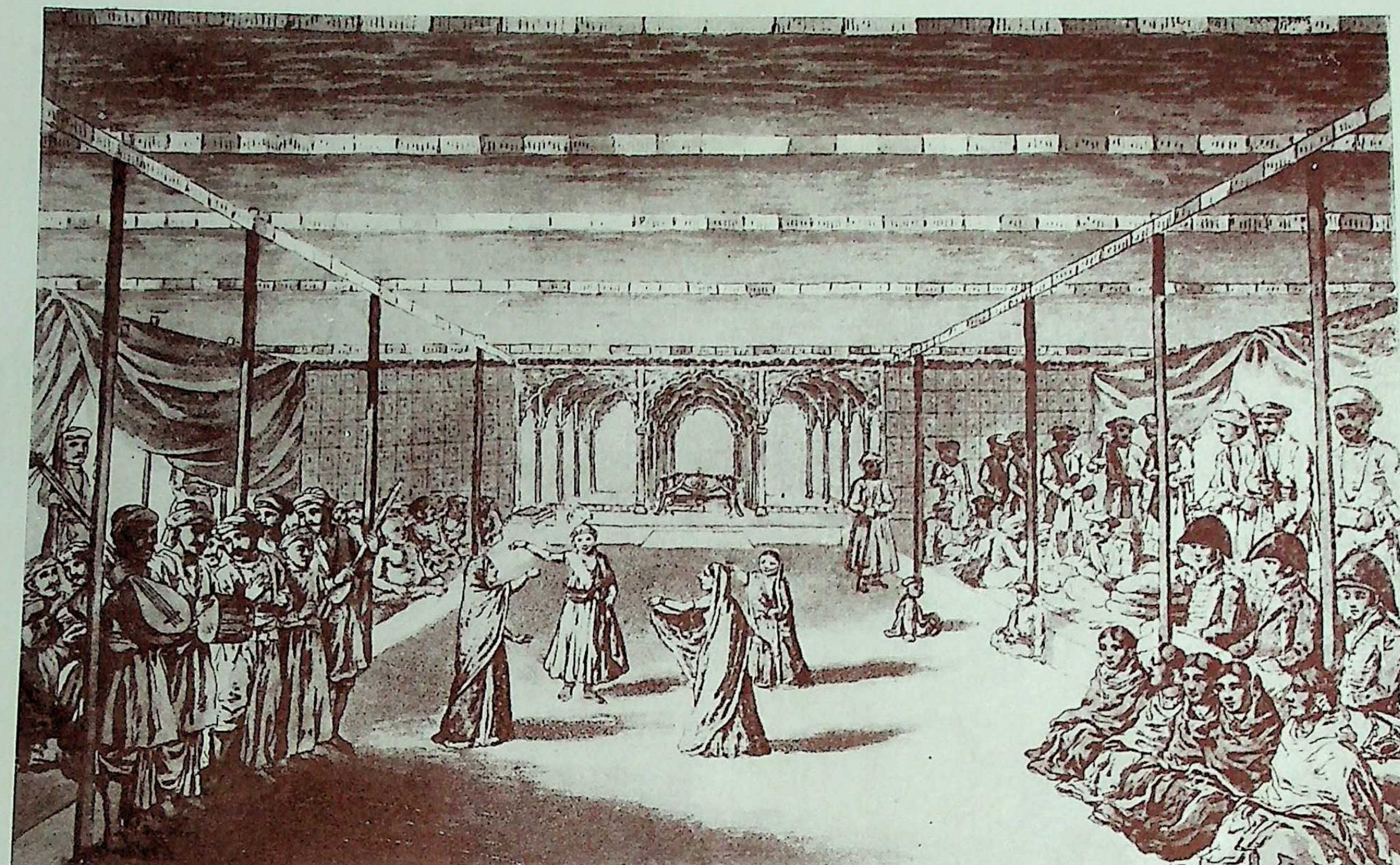
"जरासंध को मार कर श्रीकृष्ण का अर्द्ध भरताधिपति वासुदेव होना, कालकुमार के साथियों के वापिस लौट कर आने पर उनके कथनानुसार यादवों के विनाश को जानकर जरासंध और जीवयशा निश्चिंत हो गये थे, पर एक दिन कुछ व्यापारी यवन द्वीप जाते हुए जल-मार्ग से राजगृह पहुँचे और उनके द्वारा जरासंध की पुत्री जीवयशा (कंस की विधवा स्त्री) को ज्ञात हुआ कि कृष्ण जीवित हैं, इस पर वह जरासंध के पास जाकर कहने लगी कि मैं जलकर भस्म हो जाऊँगी। तब जरासंध ने उसको आश्वासन देकर मंत्रियों के निषेध करने पर भी द्वारका पर चढ़ाई कर दी और उसका श्रीकृष्ण से घोर युद्ध हुआ। अंत में जरासंध ने अपनी विजय होते न देख कर कृष्ण पर चक्र फेंका। चक्र, श्रीकृष्ण ने हाथ में ले लिया और उसी चक्र से जरासंध का बध कर दिया। तदनंतर श्रीकृष्ण नवम वसुदेव अर्द्ध-भरताधिपति हुए और देवताओंने पुष्प वर्षा की।

कृष्णचरित-संबंधी जैन-ग्रंथ

जैनागमों एवं वसुदेव हिंडी के परवर्ती जैन-ग्रंथों में निर्युक्तिचूर्णि भाषा आदि जैनागमों की प्राचीन टीकाओं का स्थान है। प्रथमानुयोग ग्रंथ में महापुरुषों के चरित थे, वे ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं हैं। उपलब्ध स्वतंत्र महापुरुष चरित ग्रंथों में 'पंडप चरित' ही सबसे प्राचीन ग्रंथ है, जिसमें रामायण की कथा भी वर्णित है। इसके रचयिता विमल सूरिने 'हरिवंश ग्रंथ' भी बनाया था, पर वह अब अनुपलब्ध है। उपलब्ध कृष्ण-चरित-संबंधी स्वतंत्र ग्रंथों में 'दि० पुनाटसंधीय जिनसेन रचित 'हरिवंश पुराण' है जो कि शक सं० ७०५ में रचित है।

कृष्ण-चरित-संबंधी परवर्ती जैन-ग्रंथों में हरिवंश पुराण, चउपन्न महर त्रिषष्ठी पुरुष चरित, नेमिचरित एवं प्रद्युम्न चरित संज्ञक ग्रंथ हैं। ये ८ वीं सदी से १९ वीं तक रचे गये हैं और वैसे अब भी नेमिचरित्रादि ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं। उन ग्रंथों-द्वारा कृष्ण-चरित-संबंधी विशाल जैन-साहित्य का परिचय पाठकों को प्राप्त हो सकता है। ये ग्रंथ प्राकृत, संस्कृत, हिंदी, गुजराती, राजस्थानी यावत् कन्नड भाषा तक में लिखे गये हैं। उनकी सूची जिनसेन कोष, जैनगुर्जर कवियों अनेकादि में प्रकाशित, दिगंबर-ग्रंथ-सूची आदि के आधार से तैयार की गई है।





रासलीला के विदेशी - दर्शक

रासलीला के विदेशी दर्शक

श्री नारविन हईन हेवन

रासलीला मथुरा मंडल की अपनी विशेषता है, जिसमें ब्रज की भक्ति, कला, संगीत और नृत्य धर्म-काव्य के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं। इन पंक्तियों के लेखक को हिंदी भाषा-भाषियों से रासलीला के संबंध में कुछ कहने में संकोच हो रहा है, क्योंकि अनेकों ने प्रत्यक्ष रूप से रासलीलाएँ देखी हैं, अथवा उनके विषय में पर्याप्त सुना है और वाल्यवस्था से ही रास-संबंधी गीत वे गाते रहे हैं, किंतु तब ऐसे बहुश्रुत व्यक्तियों को भी रासलीला से संबंधित अंग्रेजी साहित्य के विवरण अत्यधिक रोचक प्रतीत होंगे तथा योरुप के उन आदि यात्रियों के विवरणों का स्वागत करेंगे, जिनको ब्रज के रास देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

रासलीला धार्मिक कृत्य है, अतः विद्वानों को विस्मय होगा कि विदेशियों को ये लीलाएँ देखने का अवसर कैसे प्राप्त हुआ। रासलीलाएँ खुले राज-मार्गों और जन-वीथिकाओं में नहीं होती। सर्वसाधारण उन्हें देखने का अवसर भी नहीं पा सकता। रासधारी-वर्ग इन लीलाओं का प्रदर्शन कौतूहल मात्र के लिये भी नहीं करता। कृष्ण-भक्तों का यह आनंद रहस्य है, जिसे वे खुले मार्ग में सर्व-साधारण स्थल, सिनेमाघरों में नहीं दिखा सकते। कुंजविहारी के मंदिर में अथवा रसिक भक्तों के निवास-स्थानों में रासलीलाएँ की जाती हैं। विद्वान् से विद्वान् यात्री भी जो उत्तरी भारत में दीर्घकाल तक रहे हैं और जिन्होंने यहाँ का पर्याप्त पर्यटन किया है, रास के आनंद-दायक दर्शनों से वंचित रहे हैं; वे नहीं जान सके हैं कि 'सूरसेन' की इस प्राचीन नगरी में भारतीय 'नाटच' की अनुकृति अपनी परंपरा सदा से बनाये हुए हैं और भारतीय-कलाओं में अपना विशेष स्थान रखती है। केवल थोड़े से विदेशी यात्री भाग्यवश अथवा अपनी प्रकृति के सौहार्द्र से इन रासलीलाओं का आनंद-लाभ कर सके हैं और उन्होंने अपनी अक्षुण्ण स्मृति को लेख-बद्ध किया है। यह सब विद्वान् यात्री एक मत हैं कि "रासलीला निश्चय रूप से अतीव आनंददायी दृश्य-काव्य है और साधारण नाच-तमाशों से श्रेष्ठ है।"

इन विवरणों का पूर्वापर आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व लिखा गया है। अंग्रेजी भाषा में रास-लीला का सर्वप्रथम उल्लेख 'जेम्स टाड' की कृति "दि टानल्स एंड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान" (१८२९ में प्रकाशित) में मिलता है। सन् १८०५ में मि० टाड को उनकी सरकार द्वारा डिप्लोमैटिक सर्विस में राजस्थान भेजा गया था। आप इंदौर में श्रीमंत 'दौलतराव सिंधिया' के दरबार में दस वर्ष तक रहे। टाड लिखते हैं कि रासधारी वर्ग रास प्रदर्शन के लिये प्रत्येक वर्ष जन्माष्टमी के अवसर पर मथुरा से आया करता था तथा दरबार में जन्माष्टमी के दिन गोपी तथा कृष्ण-कन्हैया के प्रसंग का दृश्य उपस्थित करता था। यही निश्चित रूप से रासलीला थी। यद्यपि टाड साहब इस उत्सव का विषय उल्लेख नहीं करते, फिर भी वह लिखते हैं कि 'रासमंडल-नृत्य' हुआ था तथा ब्रज की लय-धारा में मौखिक अभिनय हुआ था, अनेकों अवसरों के विवरणों का टाड साहब इस प्रकार उल्लेख करते हैं—

"उन पात्रों की जो कृष्ण तथा उनके सखाओं और सखियों का अभिनय करते हैं, भाव-गीत अत्यंत प्रभावपूर्ण होते हैं, उनके कथोपकथन अत्यंत हृदयस्पर्शी होते हैं। मथुरा और वृंदावन के चौबे संगीत-विद्या में पारंगत हैं। इन गायक-अभिनेताओं की करुणार्द्र स्वर-लहरियों में जब

हंस-हंसिनी दोऊ अपनी सरोबरि कूँ उड़ि गए और राजा-राँनी अपने मैहैलँन में रहिवे लगे।[१]

१०

रानी हिरनावती

एकु राजा कें सात बेटी थीं। समय ने फेर खाया, राजा के दिन बुरे आ गये। एकु दिन वे राँनी से बोले—"आज तौ पुआ करो", रानी बोली—"ए सात बेटी तुम्हें कैसें पुए खा लेने देंगी।" राजा नें अक्ल बताई कै बेटियों को सुला कर पुए करियो। रानी नें सातों बेटी सुला दी और पुए करनें बैठ गई। दो-चार ही कर पाई होगी कि एक बेटी ने करबट बदली और उठकर बोली लाओ माँ बर्तन मैं माँज दूँ। रानी ने इस डर से कि और न जग जावें उसे दो पुए देकर कहा कि यह ले दो पुए और सो जा दो पुए खाकर। वह सो गई। थोड़ी देरमें दूसरी उठकर बोली माँ मैं आग अच्छी तरह जला दूँ, माँ ने उसे भी दो पुए देकर सुला दिया। इसी भाँति सातों को सुला दिया सब पुए खा लिए गए राजा के लिए कुछ न बचा।

राजा ने लौटकर पुए माँगे तो राँनी नें सब हाल बताया। राजा ने कहा कल में इन्हें बीया-बनखंड-उजाड़ में बेर खिलानें ले जाऊँगा और इन्हें वहीं छोड़ आऊँगा अब हम पर पेट पल्ता नहीं है, सो कहीं चली जावेंगी। तुम पुए करके रख लेना आकर मैं खा लूंगा। रानी रोकर के चुप्प रह गई। दूसरे दिन राजा बेटियों को बन में ले गया। बन में झरबेरियों के पेड़ लाल-लाल बैरों से लदे झूम रहे थे। उनको देखकर राजा बोला देखो बेटी, ये बेर बड़े मीठे हैं। इन्हें तोड़कर खाओ, मैं यह कंबल ओढ़कर यहाँ बैठा हूँ, शाम को तुम्हें घर लिवा चलूंगा। ऐसा कहकर वह काले कंवर को ओढ़कर एक ऊँचे स्थान पर बैठ गया, सातों बेटी बड़े चावसे बेर तोड़ने और खाने लगीं। बालिकाएँ अपनी माँको बड़ी पचती हैं। वे सुंदर बेर तो माँको अपनी झोली में रखती जाती थी और खराब बेर खाती जाती थीं। उधर राजा ने जब देखा कि लड़कियाँ बेर तोड़ते-तोड़ते दूर पहुँच चुकी हैं तो वह उठा और कंबल को एक ऊँचे स्थान पर बैठा चलता बना। लड़कियाँ कंबल को एक पेड़ पर टँगा जानकर यह समझती रहीं कि हमारा दादा वहाँ बैठा हुआ है।

जब शाम हो गई और लड़की भर-भर झोली बेर तोड़ चुकीं तो खुश होकर उस स्थान को लौटीं जहाँ कँबल ओढ़कर उनका पिता बैठा हुआ था, परंतु वहाँ लौटकर देखा कि कंबल एक पेड़ पर पड़ा हुआ है और उनका पिता कहीं पर नहीं है। वे चिल्ला कर उसे बन में रोकर ढूंढ़ने लगी और मार्ग भटक गई।

उन सात बेटियों में छै तो बड़ी थीं, किंतु सातवी छोटी उम्र की थी, जब वे अपने पिता को न पा सकी तो पाँच तो पास के गाँम में चली गई, परंतु सातवीं लड़की एक साफ स्थान पर बैठ गई। रात हो गई थी, रात को हिरणों का टोल आया और उस लड़की के चारों ओर गोला बना बैठ गया। रात को वह रोती रही तथा भूख लगने पर बेर खाती रही। सुबह हुआ बन में एक राजा शिकार खेलने आया, राजा को देख कर सब हिरण भग गए। लड़की उसे देखकर खड़ी हो गई। लड़की बड़ी सुंदर थी। राजा के आदमियों ने सलाह दी कि राजा उसे अपनी रानी बना लें। राजा उसकी सुंदरता को देखकर राजी हो गया और उसे अपने साथ हाथी पर बिठाकर घर ले आया राजा को वह हिरनों के मध्य बैठी मिली थी इस लिए उसका नाम—"हिरणावती" रक्खा था। और प्रेम से रहने लगे। राजा के कोई लड़का नहीं था, रानी तो बहुत थीं। कछु समय बाद हिरणावती रानी के पेट में बच्चा पड़ा, राजा को बड़ी खुशी हुई। उसने उसके महल में सोंने का घंटा लटका दिया कि जब लड़का हो तो रानी उसे बजा दे मैं तुरंत उसके पास आ जाऊँगा। रानी ने वैसेंई एक दिन यह देखनें के लिए कि राजा दरबार कर रहा हो तो आवेगा कि नहीं, दरबार के समय बजा दिया, राजा ने तुरंत ही दरबार बरखास्त किया और रानी के पास दौड़ा चला आया

१. सं० कं०—चंद्रभान : लोहबन।

रानी बड़ी खुश हुई और बोली कि मैंने तो केवल देखने के हेतु कि आप आवेंगे कि नहीं घंटा बजाया था, सच्ची बातपर तो अबके घंटा बजाऊँगी। राजा बड़ा नाराज हुआ और यह कहता हुआ चला गया कि चाहे वह अब सारा दिन घंटा बजाए वह नहीं आवेगा।

जब बच्चा पैदा होने के कुछ ही दिन अवशेष थे रानी हिरणावती ने अपनी और रानियों से पूछा कि बच्चा कैसे पैदा होता है। वे तो सब इससे जली थीं उन्होंने उपाय सुनाया कि आँखों पर पट्टी बाँध लो और कोठी में मुँह दे लो। रानी बड़ी सीधी थी, उसने वही किया जो कहा था। जब बच्चा हुआ तो रानी ने घंटा बजाया, किंतु राजा ने समझा कि घंटा झूंठमूंठ बजाया जा रहा है और नहीं आया। रानी के एक लड़का हुआ और एक लड़की हुई, पटरानी ने सोचा कि राजा अब इसे पटरानी बना देगा क्योंकि इसे तो बालक है और हमारें कुछ नहीं, तो उसने भंगिन बुलवाई और उसे एक अशर्फियों से भरी थैली देकर बोली कि तू इन बच्चों को कहीं फेंक दे और कंकड़-पत्थर इनकी जगह लाकर रख दे। भंगिन ने वही किया। शाम को राजा आया और रानी से पूछा कि क्या हुआ तो पटरानी ऊपर से आकर बोली हुआ क्या यह कंकड़-पत्थर हुए हैं। राजा ने हिरणावती रानी को उसी वक्त काग-बिड़ारी कर दिया। हिरणावती को बड़ा दुख हुआ कि कहाँ तो राजा उसे इतना प्यार करते थे कहाँ अब महल के कौए उड़वाते हैं। यह काम उसे करते-करते दो ही माह हुए होंगे कि उसकी सुंदरता और भोलापन कुरूपता तथा कड़ेपन में बदल गई, रानी विक्षिप्त-सी दशा में काग-बिड़ारने का काम करती रही।

इधर भंगिन उन भाई-बहिनों को एक कुम्हार के मिट्टी खोदने के गढ़े में फेंक गई थी। दूसरे दिन जब कुम्हार मिट्टी खोदने आया तो उसने उनको पड़ा देखा कुम्हार के संतान न थी इसलिए उसने इन्हें दैवी बरदान समझ कर और अपने घर ले आया जब वे कुछ बड़े हो गए तो कुम्हार ने लड़के को एक मिट्टी का घोड़ा तथा लड़की को मिट्टी की एक चाकी तथा तौला बना दिया। सारे दिन वे इन्हीं वस्तुओं से खेला करते थे। रानी की एक दासी कुएँ पर पानी भरने आया करती थी। एक दिन उसे ये लड़के-लड़की कुए पर मिले लड़का घोड़े से कह रहा था चल रे माटी के घोड़ा पानी पी ले, यह सुन कर दासी बोली—"अरे कुँम्हार के, क्यों इतरावै ऐ, कहीं माँटी के घोड़ा पाँनी नहीं पिया करते हैं"। लड़का ठुनक कर बोला—अरी बाँदी, क्यों इतरात है, कहीं रानी कंकड़-पत्थर नहीं जना करती।" दासी यह सुन कर सुन्न रह गई, वह समझ गई कि ये वही लड़के-लड़की हैं। उसने सारा हाल पटरानी को सुनाया पटरानी बहुत बड़ी घबड़ाई अंत में उसने एक तरकीब उन्हें नष्ट करने की सोची। उसने बहाना किया कि मैं बड़ी बीमार हूँ और करिया हिरन के दिल से अच्छी हो सकती हूँ। राजा ने करिया हिरन का दिल मँगा दिया, रानी ने उसमें मीठा मिलाय तथा जादू के मंत्र पढ़कर दो लड्डू बनाये। दो डोरों पर भी उसने मंत्र पढ़ा फिर इनको उसने दासी को देकर कहा कि वह इन्हें कुम्हार के लड़की-लड़के को खिला कर उनके गले में ये डोरे बाँध दे। यदि वह ऐसा नहीं करेगी तो उसे जिंदा कोल्हू में पिसवा दिया जावेगा। दासी सब सामान लेकर लड़के-लड़की के पास पहुँची और दोनों के हाथ में एक-एक लड्डू रखते हुए बोली बड़े मीठे लड्डू हैं इन्हें खा लो और ये नार में गंडे बाँध लो। लड़के ने लड्डू खा लिया और गंडा जैसे ही गले में बाँधा वह काला हिरन बन गया। लड़की ने अपना लड्डू तौले में रख लिया, जब उसका भाई बन को भागने लगा तो वह भी साथ-साथ चली गई। वन में जाकर वह रात को एक पेड़ पर चढ़ गई, उसका भाई मुँह में कभी ककड़ी, कभी और जंगली फल-फूल ले आया करता था वी उन्हें खा लेती थी।

एक दिन वही राजा जिसके कि ये बच्चे थे उसी बन में शिकार खेलने आया। सारे दिन उसने शिकार खेला, रात को उसने उसी पेड़-तले डेरा डाला जिसपर वह लड़की चढ़ी बैठी थी। ऊपर लड़की बड़ी दुखी हुई, वह सोचने लगी कि और दिन तो मेरा भाई शाम को फल-फूल दे जाता था, यदि आज आया तो यह राजा मार लेगा। वह फूट-फूट कर रोने लगी, परंतु चुपचाप से। उसकी

आँसुओं की बूँदें राजा की छाती पर पड़ीं, वह उठ कर बोला--"पेड़ पर कौन है ?" आदमियों ने बतलाया--"हुजूर, एक सुंदर लड़की पेड़ पर बैठी रो रही है।" राजा ने नीचे लड़की को उतरवाया और पूछा कि "वह वहाँ क्यों बैठी रोती थी तथा कौन है," कहाँ रहती है, लड़की ने बताया कि "मैं और मेरा भाई थे, एक दिन राजा की दासी हमें मलीदा खिलाने आई, मेरे भाई ने उसे खा लिया और हिरन हो गया, जब वह हिरन हो कर भागा तो मैं भी साथ-साथ चली आई। इस वन में आकर मैं इस पेड़ पर चढ़ गई और अब रोती यों हूँ कि यदि मेरा भाई मेरे लिए कुछ खाने को लावेगा तो तुम उसे मार लोगे। राजा ने उसे पुचकारा तथा उससे पूछा कि यदि बहुत से हिरन लाकर खड़े कर दिए जाय तो वह अपने भाई को पहचान लेगी। लड़की ने कहा--"हाँ।" तब राजा ने बरधयों को हुक्म दिया कि सब हिरनों को जिंदे ही पकड़ लो।

सब हिरन पकड़ने पर राजा ने लड़की को कहा--"पहिचान लो, तुम्हारा भाई कौन है।" लड़की ने एक काले हिरन की ओर इसारा करके कहा कि--"यह मेरा भाई है" और वह उसके गले से लटक गई। ऐसा करने से उसके गले का डोरा टूट गया और वह हिरन से लड़का हो गया। भाई-बहिन खूब मिले। राजा ने लड़के से सब हाल पूछा तो उसने बताया कि--"मैं कुए पर घोड़े से यह कह रहा था कि चल पानी पी ले, इसपर एक बाँदी ने मुझसे कहा कि कहीं माटी के घोड़ा पानी नहीं पीते हैं। मैंने उससे कहा कि यदि मिट्टी के घोड़े पानी नहीं पीते तो रानी भी कंकड़-पत्थर नहीं पैदा कर सकती। इस पर वह स्त्री घर चली गयी तथा दूसरे दिन उसने हमें एक मालीदा खिलाया जिससे मैं हिरन हो गया। मेरी बहिन ने वह मलीदा अपनें तौला में रख छोड़ा है। और ऐसा कहके उसने अपनी बहिन वाला मलीदा राजा के हाथ पर रख दिया। राजा ने उसे जाँन कर कहा कि यह तो करिया हिरन का दिल है जिसमें मीठा मिलाया है और उसे पुरानी बातें याद आने लगीं। उसे अपनी पटरानी का भेद ज्ञात हो गया। राजा जंगल से महल में उन्हें ले आया वहाँ उसने कुम्हार को बुला कर पूछा कि उसे ये सब कहाँ मिले थे ? उसने बतलाया कि आज से ११ वर्ष पहिले। ठीक ११ वर्ष पहिले रानी ने दूसरा घंटा बजाया था और पटरानी ने कंकड़-पत्थर रखवा दिये थे। राजा को खूब विश्वास हो गया कि ये उसीके लड़के-लड़की हैं और दूसरे दिन उसने दरबार में आकर यह हुक्म सुनाया--

ये लड़के तथा लड़की मेरे हैं। तथा मेरी हिरणावती रानी जो आज कल काग-बिड़ारने का काम कर रही है इसकी संतान हैं। पटरानी की नीचतापूर्ण चाल से मैंने उसे काग-बिड़ारनी बना डाला। इसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ और पटरानी के लिए यह आज्ञा देता हूँ कि उसे जिंदी ही जमीन में गाड़ दिया जाय और प्रत्येक दरबारी उसके सिरपर दो-दो ठोकर लगाए।

रानी को जमीन में जिंदी गाड़ दिया गया और हरएक नें उसमें ठोकर लगाई। इधर काग-बिड़ारनी हिरणावती रानी हुई। अब वह पटरानी हुई, राजा-रानी सुख से सैकड़ों वर्षों तक राज करते रहे। बाद को लड़का शाहंशाह हुआ।

११

आदमी की उँमरि

परमात्मा नें पैहलें चार चीजु पैदा करीं, एक आदमी, एक बरधु, एक कुत्ता और एकु घुग्घू। चारचों की उँमरि चालीस-चालीस वर्ष की धरी। पैहलें बर्ध नें कही इतनी उँमरि चलाइबौ मेरे बस की बात नाँएँ। ईस्वर नें पूँछी कि तू कितनी उँमरि चलाइ सकतु ऐ। बाँनें कही बीस बर्स। आदिमी नें कही कि लाओ जिन बीस बर्सनु नें मोई ऐ दै देउ। ईस्वर नें बे बीस बर्स आदमीऐं दै दईं। अब आदमी की उँमरि साठ बर्स की है गई।

फिरि कुत्ता नें कही--"कि महाराज, चलनी चालीस बर्स मोऊ पै नाँएँ। चों कि मोइ पेट-भरिबे कूँ दर-दर भटकनों परतु ऐ।" कुत्ता नें बारह बर्स माँगी। आदमी नें बाऊ की २८ वर्स लै लईं।

अब घुग्घू नें ऊ कही--कि महाराज, मैं ऊ बीस बर्स ई राखि सकतूँ। आदमी नें वेऊ बीस बर्स लै लईं। आदमी की उँमरि अब १०८ बर्स की है गई।

२

चालीस बर्स तक तौ बुही अवस्था रहँति ऐ, जो आदिम की मिली काई। चालीस बर्स तें ऊपर बर्ध-बारी उँमरि लगि जाति ऐं, फिरि बु दिन-राति कमाँमतु ऐ। तिसनाँ बढ़ि जाँति ऐ। बैल की नैयाँ बहिबे लगतु ऐ। जौ साठि ते ऊपर जीवै तो हाथ-पाँम तौ थकि जाँत ऐं, जीभ में बलु आइ जाँतु ऐ औरु कुत्ता की तरह घुँघियातु ऐ, काऊ ऐ गारी दै, काऊ ऐ ललकारि। जाऊ उँमरि ऐ पार करि जाइ तौ फिर घुग्घू-बारी उँमरि लगि जाँति ऐ। फिर बाकी नौऊ इंद्री सिथिल पड़ जाँति ऐं। बैठ्यौ-बै चौ फिरि बु चाह्यौ करतु ऐ। न कछू कहिवे कौ, न सुनिबे कौ।

जिही आदमी की चारि तरें की उँमरि ऐ।

१२

सगुनियाँ कोरी

एकु कोरी राजा ओ, बु सुसरारि कूँ चल्यौ। व्वानें अपनी मा ते कही कि--"अंमा मेरे काजें सतुआ बाँधि दै।" सतुआ लैकें बु चल्यौ। मा नें बा ते कहि दई कि--"बेटा, जो आदिमी रस्ता में मिलै बाते राँमु-राँमु करियो।" कोरिया चलि दीयौ।

रस्ता में एकु कपासु कौ खेतु मिल्यौ। बाँ में कपासु के टेंट खिलि रहे। बाँनें सतुआ-घोरि औरु सब पेड़ँन पै छिरकि दीओ औरु सबते राँमु-राँमु कर्तु डोलै। सतुआ सबु निभिटि गयौ। फिरि चलि दीयौ चलत-चलत अपनी सुसरारि पौंहँच्यौ। ससुरारि के ज्यौरें एक गधैया चरि रही औरु म्वाँई एकु अँधौआ कूआ ओ। गधैया के गोड़ बाँधिकें बानें अँधौआ कूआ में डारि दई, अब बु आगें चल्यौ। राति है गई, घर के पिछवार जाइकें बु ठैरि गयौ। सुसरारि में रोटी पई जा रहीं। एकु चँदिया औरु पाँच रोटी पईं। कोरिया कौ सबरी बात सुनि रह्यौ। अब बाकी सासु नें बटवारौ कर्यौ। आधी तू लै, एक तू लै। चँदिया तू लै। खाइ-पी कें सबु सोइ गए। सासु ऐ आधी राति पै मुतासु लगी। कोरिया पनारे-तर पर्यौ ई ओ। सासु नें पनारे पै ते मूत्यौ औरु एकु पदरका मारि दीयौ। कोरी राजा ने अपने मन में कही बरस्यौ सो बरस्यौ परि तड़क्यौ ऊ खूबु।

सवेरौ भयौ। कोरिया उठि कें अपनी सुसरारि में आइ गयौ। बाकी सासु नें पूछी---"लाला, कब के आए।" बाँनें कही---"हम तौ जब ई आइ गए, जब चँदिया औरु पाँच रोटीन कौ बाँटु है रह्यौ ओ। सुसरारि में नाँमवरी फैली कि कोरिया कौ जँमाई बड़ौ सगुनियाँ ऐ।

अब कुँम्हार के ऐ खबरि परी। बा की गधैया खोइ गई। बु कोरी जँमाई के जौरें आयौ। बा नें आइ कें अपनी गधैया की बात पूँछी। कोरिया नें कही जंगल-झाड़ौ फिरि आवें, रोटी-पाँनी खाइकें बताँगे। सब ते फारिग है कें बानें कुँम्हार ते कही---जा तेरी गधैया अँधौआ कूआ में गोड़-बधी परी ऐ। कुँम्हार गयौ, बाइ अपनी गधैया पाइ गई, अब बाकी बड़ी नाँमबरी फैली।

२

म्वाँई के राजा कौ हारु खोइ गयौ, बानें ऊ कोरिया की बात सुनीं। बाँनें कोरिया बुलायौ औरु बा नें कोरिया ते कही कि---"जौ तू हमारे हार कौ खोजु देगौ तौ तोइ एकु हजार रुप्या दिंगे औरु जौ न बताबैगौ तौ जाँन तें मरवाइ दयौ जाइगौ। कोरी राजा नेंकही---"सबेरें बताँगे।

कोरिया के ऐ राति-भरि नींद न आई। सबेरौ भयौ। सिपाई टेरिबे आए। बाँनें कही कै---"कुल्ला-दाँतनि करि कें बताँगे।" राजा नें सिपाईन ते कही---"जाओ, जल्दी लिबाइ लाओ।" कोरी नें जाइकें राजा पै ते एकु दिनाँ की औरु मौलति माँगी। राजा नें एकु दिनाँ की मौलति दै दई।

कोरिया घर लौटि कें आयौ। जगत-जगत बाऐ आधी राति है गई। जाँनें हारु चुरायौ का औ बा कौ नाँमु नींदरिया' ओ। कोरिया कहै---"आइ जैऔ नींदरिया, तेरी भोर कटैगी मूंड़रिया।"

अब नींदरिया भजति आई। वानें कही—"हारु तौ मोई पै ऐ। परि मोइ जैसें बनें तैसें मरिबे ते बचाइ।" कोरिया नें पूंछी—"हारु कहाँ ऐं।" बाँनें कही—"राजा के आँगन में घिरोंची है, बाके नींचे गड़ि रह्यौ ऐ।" कोरिया नें कही—"जा तेरी नारि न कटैगी।"

अब कोरिया तन्नाइ कें सोयौ। सबेरें सिपाई बोलिबे आए, बाँनें खबरि भेजी आँमत ऐं अब हाल। थोरी देर में राजा के दरबार में गयौ। वानें बतायौ हारु घिरोंची[1] के नींचें गढ़ि रह्यौ ऐ। राजा नें खुदाई करवाई हारु पाइ गयौ। राजा नें हुकमु दीयौ जितनों जि रुप्या माँगै उतनों रुप्या दै देउ।

फिरि बु एकु हातो पै बैठार्यो गयौ। अब बु हाती पै बैठि कें अपने घर कूं चल्यौ। हाती पै हचका लगतें ई ऐं। कोरिया ऐ अब डरु लग्यौ। बु किल्लायौ—

"चार पाँइ जाके थामक-थैया, एकु पाँइ नँवकैया।
ता पै चढ़ि के सरगु दिखायो, तऊ न मर्यौ मेरी मैया॥
—भैंटौ, भैंटो रे मेरे भैया॥"[2]

१३

कोरिया की मैहमानी

एक कोरिया गरमी के दिनँनु में ठाकुर के संग बाकी सुसरारि कूं गयौ। ठाकुर की सुसरारि में बड़ी-बड़ी खातिरि भई। जात ई भाँग-ठंडाई, छिरकाबु करबायो। बढ़िया पलका बिछबायो। दरी औरु दरी के ऊपर पिछौरा औरु पिछौरा ई उढ़ईया दयौ। खूबु खीर-पूरी, बूरौ, घ्यौ ते मैंहमाँनी करी। तीन दिनाँ तक बड़ी मैहमाँनी करी। फिर गाँम कूं आए। कोरिया मन में बोल्यौ कै—"मैं ऊँ सुसरारि में जाइ कें ऐसी ई खातरि करबाउँगो।"

वाकौ जेठमास में तौ छुटकारौ न भयौ। जाड़ेन में गयौ। पैहलें तौ बानें छिरकाबु करबायौ। फिरि पलिका बिछबायौ और दरी बिछाई औरु दरी के ऊपर पिछौरा बिछायौ। पिछौराई ओढ़िबे कूं लयौ औरु खूबु खीरि–पूरी ते मैहमाँनी करबाई। राति कूं जब सोयौ तौ घरवारेन नें कही कै उढ़ैया औरु लाँमें जी। वाँ नें नाहीं करि दई, बिरकुलि ठाकुर की नकल करी।

जब आधी राति पै जाड़ौ लग्यौ तौ गजी बुनबे के गड्ढा में जाइ दुबक्यौ। राति में वाकी सासु पेसाबु करिबे आई। तौ गड्ढाई में पेसाबु करि गई और पादि ऊ गई।

जब धौंतायौ भयौ तौ वाके घर के बोले—"मैहमाँन पलिका तौ खाली पर्यौ रह्यौ ऐ, तुम कहाँ सोए।" बु बोल्यौ—"अजी, हम म्वाँ सो रहे जहाँ बरस्यौ तौ बरस्यौ, परि गरज्यौ बड़ौ।" बाकी सासु सुनिकें नेंक है गई।[3]

१४

मिश्र और मिश्रानी

एकु मिसरु और मिसराँनी ए। सो मिसराँनी मिसर ते बोली—"कै हे महाराज, तुम झूंठ मत बोलौ।" जब मिसरु मिसराँनी ते बोल्यौ—"मोकूं रोटी कर दै, मैं झूठँन्नें छोड़ि आऊँ। सो मिसराँनी नें वाके काजें रोटी करदई। सो मिसर रोटींन्नें लैकें चलि दीयौ।

सो गाँव ते बाहर बगीचा में आइ सोयौ। रोटी खाइकें, पी ठंडो जल दुपैरी बिरमाई। साँम के बखत बगीचा में ते घर कूं आयौ। जब मिसराँनी बोली—"कै महाराज, झूंठँन्नें छोड़ि आए।" मिसरु बोलै—"कै तैंनें, रोटी थोरी कर दईं सो बे बौहौत दूर नाँइ पौहँची, सो मैं बापस आइ गयौ।" मिसराँनी बोली मिसर ते—"कै तुम्हारी झूंठ बोले बिनाँ नाँइ निठै।" तौ मिसराँनी नें बिचार कियौ कि इनके लियें एक कुंजा सतुआ घोरि कें दऊँ, बानें सतुआ घोरि कें कुंजा में भरि दियौ।

सो सबेरें मिसराँनी बोली—"कै लेउ महाराज, छोड़ आओ सबु।" मिसर लै कुंजा कूं चलौ

१. पानी रखने की पड़हरी। २. सं० क०—चंद्रभान लोहबन। ३. सं० क०—पातीराम अकबरपुर के संग्रह से।

सो कुंजा कौ म्हों एक उँगरिया की बराबर चौरौ। सो मिसरु का हो बा सतुआ ऐ उँगरिया ते खाइ, सो मिसरु कौ पेटु ई न भरेबे में आवै। सो मिसरु नें रिसाइ कें कुंजा पेड़ ते दै मारी। सो बाँमें, ते कछु खाइ-पी कें साँम कूँ अपने घर कूँ चलौ। सो मिसराँनी के पास आयौ।

जब मिसराँनी बोली—"महाराज, झूंठँन कूँ छोड़ि आए।" तब मिसरु बोल्यौ कै—"में झूंठँन कूँ छोड़ि आयौ, औरु मोइ तेरौ भैया मिल्यौ।" जब मिसराँनी बोली—"कै मेरे भैया की राजी-खुसी बताऔ।" तब मिसरु बोल्यौ—"कै राजी-खुसी जब बताऊँगो पैलें मोकूँ न्हाइबे कूँ पाँनी तातौ कर, फिरु रोटी करियौ। जब खाकें राजी-खुसी बताऊँगो।" सो मिसराँनी नें न्हाबे कूँ पाँनी तातौ कर दियौ औरु रसोई करि दई। सो मिस्र जी रोटी जँबे कूँ बुलाए। जब मिस्र आऐ तब मिस्रानी बोली—"अब मेरे पीहर की राजी-खुसी बताइ देऔ।" मिस्र बोलौ—"कै में रसोई जैकें तैयार है जाऊँ औरु तूऊ रसोई जैलें, चारपाई बिछाई कें में लेट जाऊँ, तब तू मेरे काजें हुक्का भरि कें लईयो, तू मेरे पास पाँव दाबती रहियौ में हुक्का पीतौ रहूँगो, तब कहूँगो।"

जब बानें रोटी जें लई और चारपाई बिछा दई औरु हुक्का भर दीयौ। बु लोट गयौ। मिस्रानी पाँव दाबबे लगि गई। जब मिस्रानी बोली—"अब मेरे पीहर की बात बताइ देउ।" मिस्रु बोलौ—"में हुक्का पी लऊँ तू पाँव दाबि कें निदरक है लै।" मिस्रानी बोली—"अब तूँ अपने हुक्काऊ पी लियौ, अब बताऔ।"

अब बु बोलौ—"कै में बीयाबाँन जंगल के बीच में पहुँचौ सो मैंने झूंठन की गठरिया बाँध-बाँध कें चारौ दिसाँन कूँ फेंकी। फेंकते-फेंकते में थकि गयौ, सो मेरी नजर एक रीछ परचौ, सो रीछ मेरे माऊँ आइ रह्यौ। सो में रीछ की देंहसति के मारें भाज्यौ। सो मेरे पीछें रीछ ऊ भज्यौ। सोमें भजिकें एक बेर के पेड़ पै चढ़ि गयौ। सो रीछ पेड़ के नींचें बैठि गयौ। सो देहसत के मारें मेरौ मूत निकरि गयौ। जो बु रीछ पेसाब-पकरि कें चढ़िबे, लग्यौ सो बू मोते चार-छै आँगुर दूर रह्यौ। सो मैंने पेसाब बंद कर लीयौ औरु रीछ गिरौ और भाग निकरि गयौ। में पेड़ पै ते उतरि कें चल्यौ ई आइ रह्यौ ऊँ।" मिसराँनी बोली—"कै निपूते, इन टल्लननें रैहँन दै, औरु नई-नई मति पथरावै।[1]

१५

चार यार

चारि यार ए, एकु बैहरौ और एकु आँधरौ एकु लँगड़ौ औरु एकु गरीब। चारचौ कहूँ कूँ मनसुआ करिकें जाइ रहे। तौ कछू दूरि चलिकें रस्ता में बैहरौ बोल्यौ—"कै भाई, मोइ कछू ऐसौ सुनाई दै रह्यौ ऐ, मति कहूँ कोई फौज गोला-से चलामति आइ रही ऐ।" आँधरौ बोल्यौ—"भाई, मोऊ ऐ धुआँधार-सौ कछू गर्द-मर्द-सी मालूम परि रही ऐ।"

लँगड़ौ बोल्यौ—"भाई आँमति ऊ दीखैगी तौ द्वै ई फुदक मे म्वाँ दीखुंगो।" गरीबु बोल्यौ—"कै भाई, तिहारौ कछू न बिगरैगौ, तुम मोइ लुटबाऔगे।"[2]

१६

निन्यानवें का फेर

एकु बनियाँ ओ, परि लोभी भौतु। साढे तीनि पैसा कौ साग लायौ करै औरु बाइ द्वै दिनाँ कूँ करचौ करै। कबऊँ न मिठाई लावै औरु न अच्छौ खाइबे कूँ खावै।

ब्वा के परौसु में एकु नित-लावा, नित-खावा कौ घरु ओ। बु रोज कँमाइ कें लावै औरु सबरी कँमाई ऐ रोजु खाइ लै। खूब साग करबावै औरु खूब मींठो लावै।

सेठाँनी सेठ जी ते बोली—"हम तौ कछू नाँइ, जि रोजु कँमाइ कें लावै औरु सबरी कँमाई ऐ रोजु खाँमतु ऐ, परि हमतौ जाके अगार न काऊ गिंती में न दरोज में। हमारे भागिमाँन हैबे

[1]. झंमनलाल अग्रवाल: बिलौठी के संग्रह से। [2]. सं० क०—पातीराम अकबरपुर के संग्रह से।

कूँ धरकार ऐ।" सेठजी बोले—"अबई जापै निन्यानबें कौ फेरु नाँइ परचौ। जा आजु जाकूँ की छत्ति पै ६६ रुपया धरिआ औरु फिरि देखि तँमासौ।" बनेंनी नें जिही काँमु कियौ।

अब बा मजूर की बहू ऐ निन्याँनबें रुपया पाइ गए। संजा कूँ बाँनें अपने मालिक ते रुपया पाइबे की बात कही। बाँनें कही—"बोल मति, कल्लि की मँजूरी मेंते एकु रुप्या बचाइ कें जाँमें औरु मिलाइ दिगे औरु सौ रुपया करिकें गाढ़ि दिगे।

दूसरे दिनाँ बाके ज्याँ आधौई साँमान आयौ औरु एकु रुपैया बचायौ, जा तरें सौ रुपया ते सबासौ, सवासौ ते डेढ़ सौ करिबे की सोचत जाँइ और खाँन-पाँन में घाटौ आँमतु जाइ।

बनियाँ नें कही—"देखिलै री, परि गयौ सारौ निन्याँनबें के चक्कर में।"[1]

१७

जाट की कहानी

काई गाँम में एकु मेब रहैं ओ। बापै घर कौ कोई काँम नहीं होंतो। यालें बानें घर के काँम-धंधे सँभारिबे कूँ एकु जाट रखि लियौ। वा मेब के और बी भैया-बंद ए। सबु आलसी ए।

एकु दिनाँ बाके घर में ते एकु आदिमी मरि गयौ, सो भैया, वे बाऐ रोंमते-पीटते औरु कबरस्तान में गाढ़िबे कूँ लै चले। वाके घर में साँझ कूँ आदमी मरौ ओ परि कबरि तक लै ज्यावे में उन्हननें राति है गई। जब बे बाऐ गाढ़ चुके तौ स्यासु कियौ कै भाई, कोई जीव-जंतु या ऐ नाँइ खोद कें निकार लै जाइ। याते तुम एकु काँमु करौ, आज राति कूँ जाट के ऐ जो हमारे य्हाँ ठौरी काँम करै ऐ, वाऐ रखवारी पै करि देउ। कै याऐ कोऊ जीबु नाँइ उखारि कें भागि जाइ। राति कूँ जाट कौ रखवारौ कबरि कौ बनाइ दयौ।

बे तौ घर कूँ चले गए और वहाँ जाट रहि गयौ। जाड़े के भईया दिनाँ ए औरु जाट के ऐ आइ गई कबरि के ढौरें औंघ, सो बु तौ एक पेड़ की जर के जौरें सोइ गयौ। आधी राति कूँ आयौ भइयँन के हौं एकु जरखु सो वा मीयाँ कूँ उखारि कें लै भग्यौ। सबेरें बु जाट कौ जागौ तौ कबरि खुदी पाई औरु बाँमें कोऊ मुर्दा न फुर्दा, बड़े स्यास में डूब्यौ।

अब तौ कै उँन मेबँन ते कहा कहुँ गो। इतने में मेब भी घर ते वहाँ कबरि के ढौरें आइ पौंहँचे। वहाँ कबरि खुदी परी, सो भैया, अब मीयाँ भी सोच में। उन्होंने वा जाट के ते कहीं—"ओ जाट के, इस कबरि कों कून उखारि के हियाँ डाल गयौ औरु मुर्दा कूँ लै गयौ।।" जाट नें कही—"जी, मोहै बी पतौ नाँऐं। यहाँ एक लै जाँतो तो मैंनें ऊँ देख्यौ ओ।" इतने में वा मेब के भईया और बच्चा बोले कै—"अब्वा जाँन, कोई खुदा का फिरिस्ता लेगा होगा।" जाट कौ भी कहँन लगौ—"हंबै जी, खुदा कौई फिरिस्तौ लै गयौ। मोहै बी जब ते याद ना रही। अब तुम्हारे कहें ते मोहै बी याद आ गई है।" अब म्याँ ओ सबै खुशी भई, इतने में जाटु बोलौ कै—

"बात आई, बात आई, बात में परिगौ फरक।
तुम कहौ वाऐ खुदा कौ फिरिस्तौ, हम कहैं वाइ जरख।।"[2]

१८

गधा ते आदमी

एकु चटसार में एकु पंडितु पढ़ाओ करतो। बाकी चटसार में एकु छोरा पढ़तो। बु चालीस-सेरी गमारु ओ। पंडित ने एक दिनाँ बु बौहौत मारचौ। छोरा बहुत भारी रोइबे लग्यौ। पंडित नें कही "अरे मूरिख, मैंने तू गधा ते आदिमी बनाइ दीयौ।"

एकु कुँम्हारु म्वाँ बाहिर अपने गधा चराइ रह्यौ। बाकें कोई औलादि नाँई, बु पंडित जी के जौरें गयौ, औरु पालागन करी। पंडित जी नें बाते पूँछी—"कि भाई, कहा बात ऐ।" बा नें कही—

१.-२. सं० क०—चंद्रभान-लोहबन।

"महाराज, एकु किरपा तौ मोऊ पै करि देउ। मैं तुमें एकु गधा दै जाँगो, बाइ मेरें काजें आदिमी बनाइ देउ। मैं तिहारौ कबऊ गुनु न भुलूंगो।" पंडित जी ने समझि लई कि जि बिरकुल्लि ई गँमारु ऐ। उँननें कुँम्हार ते कही—"कि ला लेआ अपने गधा ऐ, छोरा बनाइ कें दै दुंगो।" कुँम्हारु एकु चाक सौ गधा लाइ कें पंडित जी कूँ दै गयौ। पंडित जी नें कही—"जा, आठ महीना पीछें अपने छोरा ऐ लै जैयो।" कुँम्हारु चल्यौ आयो।

(२)

आठ महीनाँ जैसें-तैसें करि कें कुँम्हार नें काटे, जब आठ महीनाँ बीति गए का सोई बु पैहलें ई बेचि दीयौ। कुँम्हार ऐ देखत खेंम पंडित जी नें बाते फटकारि कें कही—"अरे, तू इतनी देर करिकें आयौ ऐ। बु गधा तौ तेरो मैंनें आदिमी बनाइ दीयो औरु बु तो जज्जु बनाइ कें भेजि ऊ दीयो। देखि फलाने सँहँरु में बु जज्जु ऐ, औरु बा कौ नामु ऊ बताइ दीयौ।"

(३)

कुँम्हार मारें खुसी के फूलि गयौ औरु बाई सँहँरु कूँ चल्यो। इजलास में पहुँच्यौ। सिपाई नें रोका-राकी करी। कुँम्हार नें कही—"अरे, तुमें खबरि न सुधि, ज्याँ जाई के पीछें बरबाद है गए, तुमें अपनी ई अपनी परी ऐ। आठ महीना ते मैं जाई ऐ ढूँढ़ि रह्यौ ऊँ।" सिपाई बिचारे चुप्पु-चाप है गए। बु कुँम्हारु बा जज्ज के इजलास में पहुँच्यो औरु बाते कही—"अरे मेरे बेटा, तेरे काजें मैंनें कूअँन में बास डारि दिए, चलि अब अपने घर कूँ चलि। मैंने ई तू गधा ते आदिमी बनवायौ ऐ।" जज्ज ऐ आई रिस। बानें वाँमें लात मारिबो सुरू करचौ। कुँम्हार नें कही—"अरे गधा ते आदिमी बँनबायौ, पर अबई बु पुरानी लात मारिबे की टेब नाँइ छूटी।"

१६

सत्त की जड़हरी

एकु डोकरी महादेव जी की भगतनि ई। बा की एकु नाँतिनी ई औरु कोई हतु नाँ ओ। अपने घर ते ई बु महादेव कूँ झारी में जलु भरि कें लै जायौ करती। एकु दिनाँ बु पाँनी भरि कें लै गई, म्वाँ डाँकेबारे बैठे। उनें बड़ी जोर की तिरखा लगि रही ई, उननें कही—"डोकरी हँमें पाँनी प्याइ।" डोकरी नें कही—"जौमैं तुमें पाँनी प्यामति ऊँ तौ मेरो नित्त नेंमु छूटतु ऐ।" झट्ट बाँनें नाँई करि दई। डाँकेबारेनु नें कही—"जाँन दै मैया, तेरी राजी।"

अब बानें महादेव के ऊपर लोटा ओंधौ करिदीयौ, परि जलु निकरै ई नाँ। बानें कही, आजु कहा बातै, ला उनें पाँनी ई प्याइ आऊँ। बु पाँनी प्याइबे लगी, सबनें पाँनी पी लियौ औरु महादेब जी पै चढ़ाइ बे कूँ फिरि ऊ पाँनी बचि रह्यौ।

डाँकेबारेनु नें पूँछी—"तेरें औरु को ऐ।" बाँनें कही—"बेटाओ, मेरें एक क्वारी नाँतिनी ऐं।" डाँकेबारेनु नें कही—"जब बाकौ ब्याहु होइ तब हँमै पै खबरि करि दीजौ।" डोकरी नें कही—"अच्छौ बेटा।"

(२)

छोरी कौ ब्याहु आयौ। डोकरी ऐ तौ कछू यादि ऊ न रही। डाँकेबारेनु नें कहूं ते सुनि लई। बिन्नें ऊँट, हाथी, घोड़ा औरु गऊ, गाढ़ीन पै साँमानु लदबाइ दीयौ औरु आइ गऐ। डोकरी ऐ यादि ऊ न रही। बा के सबु काँम ऐ बेई करि दयौ करें, परि डोकरी पहिचाँन न पाई। कन्या-दाँनु करि कें डाकूननें आइ के राँमु-राँमु करी। डोकरी नें कही—"बेटाओ, मैं तौ तुमें पैहँचान नाँइ पाई।"

डाँकेबारेन कौ बारंटु ओ। बाई बखत सिपाई आए औरु डोकरी के सामुई बु गिरफ्तार करि लिए। डोकरी नें अपने मन में बड़ी धिरकारी माँनी औरु महादेव जी ते बड़ी बीनती करी। महादेव जी की करामाति ते बेड़ी सिपाई डारे औरु बे खुलि जाँइ। फिरि उनें कुतवाल के जोरें लै गए। बानें बे हवालात में बंद करबाइ दिए। जब बु उनें हवालाति में बंद करै सोई झट्ट वा के तारे खुलि जाँइ। फिरि बु डोकरी बुलाई। बाते जब पूंछी-करी कहा बातै तौ डोकरी नें सबु किस्सा कहि दीयौ।

फिरि कुतवाल नें उन डाँकून ते पूछी—"भाई, कहा तुम कहत ओ"। उन्नें कही—"साव, सत्त की जर हरी हौति ऐ, हमनें डोकरी कौ सत्तु देखि लीयौ। अब हम सिव जी के भगत हैं जाँगे और अच्छे-अच्छे काम कियौ करिंगे।"

कोतवाल नें डाँकेवारे छोड़ दए।

२०

धरमराज

काऊ गाँम में एकु फ़कीर और जाट रह्यौ करें। जाट कें एकु छोरा ओ। फ़कीर कें अपनी औलाद न होंने से उस जाट के लड़के से अपने हुक्का की चिलँम भरि बायौ करै ओ। जब जाट कौ नाहीं करतो तौ फ़कीर कौ कहतो कि—"या तौ मेरी चिलँम भरिजा, नहीं तौ मैं तेरे ऊपर मसाँन छोड़ि दुंगो।" जाई फिकिर में जाट कौ लड़िका सूखिने लगौ। एकु दिनाँ जाट अपने खेत पै ते आइकें जाटिनी ते बोल्यौ—"कि लड़िका क्यों सूखतौ जाइ रह्यौ ऐ। जाहि का दुख है।" जाटिनी बोली—"कि दुखु तो जाइ कछू बी नाँऐं परि जि फ़कीर जाते चिलँम भरबावै ऐ औरु जब लड़िका मनें करत्वै तब कैहतु ऐ कि चिलँम न भरैगौ तौ मैं तेरे ऊपर मसाँन छोड़ि दुंगो। जाई फिकिर ते लड़िका सूखि गयौ ऐ।"

फिरि जाट नें फ़कीर ते कही कि—"क्यों रे फ़कीर के, तू लड़के को क्यों धमकावै ऐ औरु चिलँम भरबावै ऐ, तेरौ हँम पै कछू आवै ऐ का।" फ़कीर नें कही—"कि मैं तो जाई पै भरवाऊँगो औरु न भरैगो तौ मसाँन छोड़ि दुंगो।" जाट नें कही कै तू यों न मानैगौ तौ मैं धरमराज छोड़ि दुंगो। फ़कीर नें सोची कै जोंई धमकावतु ऐ। कही—"छोड़ि दीजौ।"

फिर जाट नें बाई बरखत पोखरा में ते एक कछुआ लाइकें बाके ऊपर गीली मिट्ठी थोपि कें घर में तैयार करि लियौ। फिरि आधी रात के समे पै कछुआ के ऊपर कैई दीए जोरि कें वा गीली मिट्टी में जमाइ दए औरु कछुआ के पैर में रस्सी बाँधि कें अपने द्वार पै लाइकें रस्सी पकरि कें बैठि गयौ। फ़कीर कौ घर-साँमनें ई ओ। कछुआ सीधौ फ़कीर के ई घर लगो औरु धीरें-धीरें घर में भीतर जाइबे लगौ। इतने में ई बा फ़कीर की मींयट्टी जगि परी औरु वा कछुआ ऐ देखि कें बोली—"तौबा-तौबा, ओ जुंमा के अब्बा, जाट कौ धरमराज तो आभी गया, औरु तुम्हारा मसाँन जानें कब छूटैगा।" फ़कीर ओ माँ सूतौ, सो जागौ और वा धरमराज ऐ चलतौ देखि घबड़ाइ उठौ और जाट ते बोलौ—"कि जाट के, जा अपने धरमराज कूं रोक मैंनें बख्शा और मेरे खुदा ने बख्शा। अब तेरे लड़के से मैं अपनी चिलँम नहीं भरवाऊंगा"

फ़कीर के बौहौत अतुनैं-बिनै करिबे पै जाट नें अपनों धरमराज लौटाइ लियौ, कछुआ लौटि आयौ बाइ गोद में लैकें जाट घर में भीतर चलौ गयौ। कछुआ के ऊपर ते मिट्टी हटाइ के सबेरे ही बाई पोखरा में कछुआऐ डारि आयो।[1]

२१

अंधेरे नें घर छोड़ि लयौ

एकु बाप-बेटा ए। अकेले ई ए। कोई बइअर-बाँनी घर में हति ईं नाँ। बिचारे एकु छप्पर में ई गुजर करत ए। म्वाँईं एकु कोंनें में रोटी बनाइ लेंत ए। जाई तरें उनकौ जीबनु चल्यौ करतु ओ।

एकु पोत एकु गाँम ते आदमी आयौ। बु आइकें वा छोरा की सगाई करि गयौ। अब बाप-बेटा नें सोची भाई, अब तौ एक कोठौ बनामनों चहिऐं। बहू आवैगी तौ कहाँ बैठैगी। सोई वे कौठौ बनाइबे लगे।

[1]. सं० क०—रामगोपाल शर्मा तूमोला, पो० छाता, जि० मथुरा।

कोठौ बनाइ कें बु उननें पाटि दीयौ। दिनु मुँद्यौ, राति आई। राति कूँ छोरा वा कोठे में घुस्यौ। सो देखै तौ म्वां अँधेरौ ई अँधेरौ। बानें किल्लाइ कें अपने बाप ते कही—"अरे दादा देखियौ, हमनें तौ इतनी नींठि ते कोठौ बनायौ औरु जि कोठौ आजु ई अँधेरे नें छीड़ि लयौ। अब कैसें होइ, कितकूँ जाइ।" बाप नें ऊँ आइ कें देख्यौ तौ बाइ अँधेरौ ई अँधेरौ दीस्यौ। अब दोऊ बेचारे डरपि गए। कोई भीतर धँस्यौ ई न। फिरि उन दोऊँन नें सोचा-बिचारी करिकें कही ला लंबरदार के ज्याँ चलें। बु कछू करै तौ भलें ई करै।

(२)

दोऊ बाप-बेटा मुकदँम के ज्याँ पहुँचे, बा ते जाइ कें कही—"लंबरदार जी, हमनें कल्लि तौ अपनों कोठौ बनाइ कें तैयार कर्यौ ओ औरु आजुई बु अँधेरे नें छीड़ि लीयौ, अब कहा करें, कित कूँ जाइ।"

लंबरदार समझि गयौ कि जे चालीस-सेरे गँमार ऐं। उँननें फैसला दीयौ कै अपने कोठे ऐ खोदि-खोदि कें हमारे खेत में डारि आऔ। अँधेरौ तुम्हारे घर ऐ छोड़ि देगौ। उँननें कही बड़ी अच्छी बात ऐ।

आइ कें वे अपने कोठे ऐ फाँबरे ते खोदिबे लगे। द्वै घंटा खोदा-खादी करी परि बा में उजीतौ ई न भयौ, हार-झखमारि कें बाप नें बेटा ते कही—"कि बेटा जा, औरु अपनी बहू ऐ लिबाई कें ला, वा पै कोई तरकीब आँमति होइ तौ भलेंई आँमति होइ।" बेटा अपनी सुसरारि कूँ चल्यौ।

(३)

सुसरारि में पहुँचि कें बा नें कही—"हमारौ घरु अँधेरे नें छीड़ि लियौ ऐ। अब मेरी बहू ऐ भेजि देउ। स्याइति जिही बापिस लै ले।" बहू के पीहर बारेनु नें पहलें तो नाहीं-नूकर करी, परि बु गोंहन परि गयौ कि लिबाई जाँगो। पीहर बारेनु नें भेजि दई।

घर आइ कें बहू नें देखा-भारी करी, बाँनें उनते कही—"बसि, इतनी-सी बात ऐ। लाऔ मैं बापिस लुंगी जा घर ऐ।" बानें उनते कही रुई लाऔ, तेल लाऔ औरु एकु सरवा लाऔ। बाप-बेटा एक लैहमा में लै आए। बहू नें दीऔ बनायौ, जोरचौ औरु घर में धरि दीयौ। अँधेरौ भागि गौ। बाप-बेटा बड़े खुस भए, जो मिलै वाई ते कहें—

"अरे भैया, हमारौ घरु अँधेरे नें छीड़ि लियौ ओ, हमारी बहू नें अपनी करामाति ते अँधेरौ हराइ दीयौ औरु घरु बापिस लै लयौ।[1]

२२

एक ठाकुर की चतुराई

दस बारह जने मिलिकें काऊ मेले कूँ गए। तीन-चार दिन तक मेलौ खूब देख्यौ। फिर गाँम कूँ आए। मेले में सबु दाँम खर्चु है गए। एकु अधेलाऊ काऊ पै ना रह्यौ।

गैल में बिन्नें भूँख लगी औरु गाँमु बौहौतु दूर, औरु साँझ बैसें है आई। अब बे अबेर और भूख के मारें बिकल। गैल में एकु गाँमु आयौ। बाई में डटि गए औरु हलबाई की दुकाँन पै पोंहँचे। सबु जने मिठाई तुलबाइ कें खाँमन लगे। खूबु झिकि कें खाई। खाइ-पी कें कुल्ला-दाँतिन करि कें निच्चू है गए। अब बनियाँ बोलौ—"लाऔ जी दाँमु।" एकु बोल्यौ—"भाई, दाँम दिंगे धोंताएँ। अब का भांगे जातें। तेरी दुकाँन पै सोमिंगे।" बनियाँ बोल्यौ—"कोई बात नाएँ, धोंताएँ दै दिजौ।" बे बोले—"भाई सेठ, अब सोइबे कूँ कहूँ ठौर बताइ दै।" बनियाँ नें एक दूसरी दुकाँन कौ तारौ खोलि दियौ। औरु वे वामें सोइ गऐ। बनियाँ नें बाहिर ते तारौ दै दियौ।

अब वे बोले—"भाई, धोंताऐं कैसें होगी।"

एकु बोल्यौ—"जब दिन निकसाऊ होइ तब द्वै-चारि दर्द कौ मूंड़ौ बनइऔं औरु द्वै-चारि उसासु खचि जैऔं। सबु मैं देखि लुंगो।" अब धोंतायौ भयौ, कोई किल्लाइ, कोई कछू करै।

[1]. सं० क०—चंद्रभान : लोहबन।

बनियाँ आयो, तारी खोल्यौ। बनियाँ किल्लामनि सुनिकें घबड़ायौ, बोल्यौ—"ठाकुर साब, का बात ऐ"। ठाकुर बोल्यौ—"बातै धूरि, जानें मिठाई में राति तेनें कहा खवाइ दियौ, मेरे तौ चारि आदमी मरे परे ऐं औरु कछून के पाँम टूटे जाँतें, किल्लाइ रहे ऐं कै पाँम टूटि चले। कछू दर्द के मारे ऐंठि रहे ऐं।" अब बनियाँ घबड़ायौ। जि भली भई। मेरी तौ जानि कूँ नौबति आइ गई। वौ ठाकुर ते बोल्यौ—"भाई, अब कहा होंनों चहिएँ।" ठाकुर बोल्यौ—"पैहिलें तो डाकदर कूँ बुलाइकें लाऊँगो, पीछें कछू करूँगो।" बनियाँ बोल्यौ—"ठाकुर साब, जैसें बनें जैसें न्याँई फैसलौ कर लै। डाकदरै काहे कूँ बोलै। आ फैसलौ करि लऊँ, भाई, सौ-दोसौ रुपईया तू लै-लै।" ठाकुर बोल्यौ—"रुपया लुंगो मानस गैल सों। हम सबु बारह जने हैं। बारह सौ रुपईया लुंगो। नहीं हटि जा, मोइ जाँन दै।" बनियाँ बोल्यौ—"नाँइ ठाकुर, कहूँ मति जाइ, भई तू बारह सौ ई लै जा। अपनी कला समेंट।"

ठाकुर नें लै बारह सौ रुपईया, बिनते कही कै उठौ रे, गाँम में मरियों चलौ झट्ट।" सबु ठाड़े है गए औरु लै सौ-सौ रुपईया अपने घर आए।[1]

२३

धर्म की जर हरी।

एकु बिराँमनु और एक बिराँमनी काऊ गाँम में रहत ऐ। ऐसौ बखतु आइ गयौ कै उनकी गुजर न है बे लगी औरु काऊ दूसरे सैहर में जाइ कें रहे।

बिराँमनु राजा के न्याँ भीक माँगिबे गयौ। राजा काऊऐ कबऊ भीक नाएँ देतो। परि वा दिनाँ जानें बाके मन में कहा आइ गई कै बानें एक गिन्नी बा बिरामनु ऐं दै दई। बिरामँनु नें कही—"धरँम की जर सदाँ हरी ऐ"। औरु अपने घर कूँ लौटि आयौ।

अब बिरामनु गीधि गयौ। सो रोजु बाके न्याँ जाइ और एक गिन्नी लै कें औरु "धरँम की जर हरी ऐ" कहि कें चल्यौ आवै।

अब राजा नें राँनी ते कही—"जि बिराँमनु तौ बड़ौ गीध्यौ, औरु जा तरह ते खजाँनों खाली है जाइगौ।" राँनी नें कही—"कल्लि बाते न्यों कहियों कै भीक जब मिलैगी, जब तू मोइ धर्म की हरी जर दिखाइ देगौ।

राजा नें दूसरे दिनाँ जिही काँमु करचौ। बिराँमनु बिचारौ बिनाँ भींक लएँ ई चल्यौ आयौ।

(२)

आइ कें बाने बिराँमनी ते सबु बात कही। बिराँमनी नें कही—"कोई बात नाएँ, कल्लि राजा ऐ जंगल में लिबाइ जइयों, म्वाँ एकु संगमरमर कौ मंदिर पावैगौ। बा में एकु घोड़ा बँध्यौ पावैगौ, बा घोड़ा पै राजा ऐ बैठारि दीजों, सोई बाइ धरम की हरी जर दीखि जाइगी।"

बिराँमनु दूसरे दिनाँ राजा ऐ जंगल में लिबाइ लैगौ। म्वाँ मंदिर पायौ, वा में तारौ लगि रह्यौ ओ। राजा के हात लगामत खेंम तारौ खुलि गयौ म्वाँ देखै तौ एक भौतु अच्छौ घोड़ा बँधि रहचौ। बिराँमन नें राजा ऐ बा घोड़ा पै बैठारि दयौ औरु कै तौ राजा घोड़ा पै बठचौ सोई बु बाइ लै उडचौ। लै जाइ कें म्वां पौंहँच्यौ जहाँ सुरग और नरक के दरबज्जे ए। म्वां जाइकें देखै तौ नरक के दरबज्जे में तौ तारे ठुकि रहे औरु सुरग के किबार खुले परे। राजा नें पूछी तौ म्वाँ के लोगँनुनें कही—"फलानौ-फलानौ राजा अब दाँनु-पुन्न करिबे लग्यौ ऐ। बाकूँ सुरग कौ दरबज्जौ खुलि गयौ ऐ औरु नरक कौ बंद है गयौ ऐ।" फिरि झट्ट राजा ऐ घोड़ा बाई मंदिर में उतारि लायौ। बिराँमन ते राजा नें कही—"अब कल्लि ते हम तोइ भीक न दिंगे। हमारे काजें अबु सुरग के दरबज्जे खुले हैं।"

बिराँमनु उदास है कें अपने घर कूँ चल्यौ आयौ, औरु राजा खुस हैं कें अपनी राँनी के जौरें पौंहँच्यौ।

[1]. पातीराम : अकबरपुर के संग्रह से।

बिराँमनु नें दूसरे दिनाँ फिरि कही राजा ते जाइ कें कि "सिरी महाराज, आजु और चलौ और धरम की जर देखि आऔ।" राजा राजी है गयौ, और बिराँमन के संग चलि दीयौ।

मंदिर पै पौहुँचे। तारौ खोल्यौ सो देखै तौ म्वाँ एक गधा बँध्यो ओ। गधा ऐ देखत खँम राजा कौ सीना ठनक्यौ। राजा गधा पै बैठचौ और गधा उड़ि गयौ। जाइ कें देखै तो नरक कौ दरबज्जौ खल्यौ परचौ और सुरग के तारे ठुकि रए। राजा नें पूछी—"भाई आजु जि कहा बातै।" उननें कही—"बु राजा जंसें-तैसें तौ दाँनु करिबौ सीख्यौ औरु फिरि बानें बंद करि दीयौ, सो बाकूँ नरक कौ दरबज्जौ खुलि गयौ औरु सुरग कौ बंद है गयौ ऐ।" राजा नें पूछी—"अब सुरग कौ रस्ता मेरे काजें कैसें खुलै।" उननें कही—"तू बारह बर्स तौ भिष्टा खाइ औरु राजु बा बिराँमन ऐ दाँनु में दै देइ तब खुलै।" राजा नें कही चाएँ सुरगु भार में जाऔ, मैं भिष्टा न खाँगो।" गधा बाइ फिरि बा मंदिर में लै आऔ।

राजा नें राँनी ते आइ कें सबु हवालु कहि दीयौ। राँनी नें कही—"अच्छा।" राँनी रोजु थारी भरि के राजा कूँ भोजँन करावै औरु भंगिनि पै सींक ते नेंकु भिष्ठा डरवाइ देइ। राजा ऐ कछु खबरि न, औरु रोजु भोजँन करि जाइ। जा तरह ते बारह बर्स बितीत है गए।

बारह बर्स पीछें राँनी नें राजा भेज्यौ कै जा देखि आ। धरम की जर हरी हत्यै कै नाँइ। बु मंदिर में पौहुँच्यौ। म्वाँ ते बैठि घोड़ा पै म्वाँ भगवान जी के लोक में पौहुँच्यौ म्वाँ जाइकें देखै तौ सुरग कौ द्वार खुलि रह्यौ औरु नरक बंद, पर बानें पूछी भाई, जि कहा बात ऐ। उननें कही—"बा राजा नें बारह बर्स तक भिष्टा खाइ लई, अब बाकूँ सुरग कौ दरबज्जौ खुलि गयौ।" राजा ऐ बड़ौ अचंभौ भयौ, राँनी के जौरें आयौ।

राँनी नें राजा ते सबु बात कहि दई। राजा नें बिराँमनु बुलायौ औरु बाइ एक गिन्नी दई। बिराँमन नें कही "धरम की जर सदाँ हरी ऐ।"[१]

२४

जि कौंन की बहू होगी।

एकु बाढ़ई के छोरा, एकु सुनार के छोरा, एकु दर्जी के छोरा औरु एकु बिराँमन के छोरा में यारी ई। एकु पोत वे चारचौ व्यापारु करिबे कूँ गए। एक सैहैरपनाँ के बाहिर एकु बगीचा में राति बसेरौ करचौ, म्वाईं खावा-पीई करी। खाइ-पी कें जब सोइबे लगे तब उननें सोची—"भाई, जंगल कौ मामलौ ऐ। राति कौ मामलौ ऐ। राति कौ समैया ऐ। द्वै-द्वै घंटा जागि कें सबु जने पैहरौ देउ"। सबु जा बात पै राजी है गए।

पैंहलमपत बढ़ई के छोरा कौ पैहरौ आयौ। बढ़ई कौ बेटा जागि परचौ हौ तीनों सोइ गए। बढ़ई के बेटा नें सोची "ला द्वै घंटा में पूतरी ई बनाइ लऊ। बैसेंई बैठचौ-बैठचौ कहा करुंगौ।" सोई बानें अपने पैहरे में एक बौहौत कछू मलूक काठ की पूतरी बनाइ दई। अपने पैहरे ऐ बजाइ कें बढ़ई कौ बेटा सोइगौ औरु दर्जी कौ बेटा जागि परचौ।

दर्जी के नें बु पूतरी धरी देखी, बा नें अपने मन में सोची—"ला मैं ई बैठचौ-बैठचौ कहा करूँगो, ला जा पूतरी के काँजें पोसाकई बनाइ दूँ।" सोई बानें द्वै घंटा में पूतरी के काजें खूबु अच्छी पोसाक बनाई औरु बाइ पैंहराइ दई। फिरि बाऊ कौ पैहरौ खतमु भयौ औरु सुनार कौ जाग्यौ।

सुनार के नें पूतरी के काजें गैहनों गढ़चौ औरु नख-सिख ते गैहने ते लादि दई, फिरि बाऊ कौ पैहरौ बीति गयौ औरु बाँम्हन कौ जग्यौ।

[१]. सं० क०—चंद्रभान: लोहबन, टोंटा भंगी से सुनो।

बाँम्हन के नें सोची "बढ़ई के नें पूतरी बनाई, दर्जी के नें पोसाक सीं ई औरु सुनार के नें गँहनों बनाइ कें पैंहरायौ, अब मैं कहा करूँ।" बानें कही—"ला, जाँमें में जीऊ ई डारि दऊँ।" सोइ बानें अपनी उँगरिया चीरि के बा पूतरी के म्हों में निचोरि दई। सोइ बु पूतरी जी उठी।

सबरें उठि कें चारचौन में लड़ाई है बे लगी, बु कहै जाइ में लुंगौ, औरु बु कहै जाइ मैं लुंगौ।

(२)

राजा के ज्याँ न्याउ पौंहँच्यौ। राजा नें सोचि-समझि कें हुकँम सुनायौ—"भाई, बढ़ई के बेटा नें पूतरी बनाई, सो बाकी तौ बेटी रही, बाँम्हन के नें जीउ डारचौ सो बु ऊ बाप थानिक-हीं रह्यौ। दर्जी के बेटा नें सीकें कपड़ा पैंहराए, जि काँमु भातई कौ ऐ, सो दर्जी के की बु वैहन लगी। सुनार के नें बु काँमु करचौ ऐ जो मालिक कौ काँमु ऐ। बैइअरबाँनी हमेसाँ ई गँहने की फिराद अपने मालिक ते करति ऐ। जाते जि बैअर सुनार के की रही।[१]

२५

दीन और दोजखु

एक पंडित जी कासी ते जोतिस पढ़ि कें आइ रहे। रस्ता में एकु सँहैरु परचौ। म्वाँई पंडित जी कूँ राति है गई। पंडित जी नें एक दुकाँन के तखता पै बिस्तरु लगाइ लीयौ औरु सोइ गए। बा दुकाँन के ऊपर एक रंडी रह्यौ करति ई।

पंडित जी थोरी-सी देर ही सोइ पाए कि म्वाँ है कें एक मुरदा निकरचौ। पंडित जी नें 'राँम-राँम सत्ति है' सुनीं। रंडी नें अपनी नोंकराँनी ते कही—"कि देखिऔ री, जि दीन कूँ गयौ कि दोजख कूँ।" नोंकराँनी बाहिर निकरी। लौटि के बानें रंडी ते कही—"अरी, जि तौ दोजख कूँ गयौ।"

पंडित जी जि सबरी बात सुनि रए ए। उँननें अपने मन में सोची हमनें बैसई १२ वर्स कासी की धूरि फाँकी और जि विद्या आई ऊ न। जा विद्या के काजें रंडी ई ऐ गुरू बनामें।

पंडित जी जि सोचि कें ऊपर रंडी के अटा पै चढ़ि गए। रंडी ने पंडित जी कौ आदरु-सतकार करचौ। पंडित जी नें अपने मन की बात रंडी ते कही। रंडी ने कही—

"जाकी ल्हास के संग १० आदिमी कानाफुंसी करत जाँइ कि भलौ भयौ जि मरि गयौ। बाइ समझौ कि जि दोजख कूँ गयौ, औरु जाकी ल्हास के संग सबु लोग सोग मनावत जाँइ औरु बाकी तारीफ करत जाँइ; बाइ समझौ कि जि दीन कूँ गयौ।"

२६

एक चतुर नारि

एकु गाँम के पास ई एक हरहारौ खेत जोत रह्यौ ओ। बाई गाँम की एक स्त्री बा हरहारे के खेत की मेंड़ पै है कें ऐसे समे में निकरी जब कि धूप बौहौत तेज पड़रई ई औरु हरहारे सें बोली कि—

"धूप परै धरती जरै, पाँव न मिट्टी खाइ।
हारी हर मत जोतियौ, जब तक पार बसाइ॥"

तब हरहारे सें इसकौ कोई जवाब देते न बनों। स्त्री अपने घर कूँ चली गई औरु हरहारे नें भी समे पै हर छोड़ि कें अपने घर की रहा लई औरु घर जाइकें जि दोहा कह्यौ कि—

"धूप परै धरती जरै, पांव न मिट्टी खाइ।
हारी हर मत जोतियौ, जब तक पार बसाइ॥"

१. सं० क०—चंद्रभान : लोहबन।

तब बा की स्त्री नें कह्यौ कि—"फिर आपनें कुछ जबाव जा दोहा कौ दियौ कि नाँइ" सो तौ बोलौ—"मोते कुछ उत्तर देंत नाँइ बनों। तो बाकी घरकी नें द्वै दोहा बता दए कि कल बु फिर आवै तौ पैहलें इस दोहे को और दूसरी बार इस दोहे को कह देंनाँ। हरहारे नें दोऊ दोहा सीखि लए। दूसरे दिनाँ हरहारी नें हर जोड़ दिया और बाई खेत की मेड़ पै है कें जब बु पैहले बारी स्त्री निकसी तौ हारी नें कहा कि—

"लीलौ लहँगा पहरि कें, नारि नगर कूँ जाइ।
सत-बदनी दारी जब बदूँ, हर कौ बयौ न खाइ।।"

स्त्री नें ऊ अपने पहले दिन के कहे भए दोहा कौ जबाव पाइकें कही कि—

"सीखी-साखी तें कही, जो कहीं कहतौ कालि।
घर कौ बलँम बिसारि कें, तू पिया में नारि।।"

फिर मर्द ने कहा—

"ओंड़ौ जोतूं धिन बऊँ, ठोकि लगाइ दऊँ बारि।
जौ लगि जाइ मेरौ एक दरौ, तौ तोसी करि लउँ चारि।।"

एसौ कोरौ-सौ जबाव पाइ बु स्त्री अपने घर कूँ चली गई।[1]

२७

जा जुग में रह्यौ, कछ बाऊ के गुन गाओ

एकु ग्यानी-ध्यानी पंडित जी ए। वे एक राजा के ज्याँ रह्यौ करत ए। बा राजा के ज्याँ वे कोई अन्याउ नाएँ होंन देत ए। सदाँ धरँम की ई बात करबाओ करत ए।

बे पंडित जी एकु गाँम में रह्यौ करत ए और रोजु राजा के दरबार में आयौ करत ए। एकु दिनाँ रस्ता में उनें कलजुग मिल्यौ, कलजुग नें पंडित सें आइकें पालागें करी। पंडित जी नें पूछी—"तू को ऐ।" बानें कही—"मैं कलजुग ऊँ, मैं तुमते द्वै बात करँन कहतूँ।" पंडित जी नें कही—"कहा बात है भाई।" जा पै कलजुग नें कही—"महाराज, जि तुम जानत ई औ कि आजु की घरी मेरौ ई सबु जगें राजु ऐ। तुम राजा पै कबऊ मेरे मर्जी-मुताबिक काँमु नाएँ होंन देंत। जाते मैं तुम्हारे जौरें आयौ ऊँ। कछू पापु, कछू अन्याउ ऊ है जाँन दै करौ। मेरी पूँजा ई जिनते होंति ऐ। जा जुग में रहौ कछू बाऊ के गुन गाऔ।"

पंडित जी नें कही—"जाँतु नाएँ परे में। हम जहाँ रहिंगे म्वाँ पापु है जाँन दिंगे? जा चल ज्याँ ते। हम कवऊ राजा के ज्याँ पापु न होंन दिंगे।"

कलजुग नें कही—"तुम्हारी राजी महाराज, और जि कहि कें कलजुग हटिगौ।

(२)

दूसरे दिनाँ पंडित जी अपने गाँम मेंते राजा के दरबार में जाइ रहे। रस्ता में कलजुग नें कहा काँमु करचौ कि एक बौहौत ई फली-फूली बारी अपनी माया ते लगाइ राखी। बा में बेंगन लगि रहे। कासीफलु लगि रहे। पंडित नें बौहौत सुंदर बेंगन के फल देखिकें सोची—"ज्याँ कोई तौ हतु नाएँ और बेंगन जे राजा के लाइक ऐं, अब कहा करूँ।" फिर उननें चार बेंगन तोरि लीए और बा बेगँन के पौदा के जौरें चारि पैसा धरि दीए। जाते धरँमु ऊ न जाइ और काँमु ऊ है जाइ। अब बे उन बेंगँन नें लै कें राजा के ज्याँ पौंहँचे और राजा ते कही—"राजा, आजु हम बहुत ई कछू अच्छे फल लाए ऐं।" राजा नें कही—"निकारौ महाराज, देखूँ कैसे ऐं।"

कै तौ पंडित जी नें अपने रूमाल में ते वे फल खोले, सोई ईस्वर-करनी बे चारि घेंटा सूअर के बच्चा है गए। अब तौ राजा बड़ौ नाराज भयौ और बानें पंडित जी ते कही—"जाई बखत मेरे

[1]. सं० क०—रामगोपाल ओछटा, पौ० जुगसाना—मथुरा।

दरबार में ते निकरि जाओ। तुमनें मेरे दरबार में मेरे सँग जा तरह कौ बरताबु करचौ।" पंडित जी बिचारे नारि नींचे कूँ करें, बिना कछू कहें-सुनें दरबार में ते निकरि आए औरु अपने घर की रस्ता गहि लई।

२८

चतुर की चतुराई

किसी गाँम में एक मियाँ और मींयट्टी रहते। समें पाकर उन पर शकीमी आ ई गई और मियाँ जी शकीमी आ जाने की बजह से दूर देस में निकरि गए। वहाँ उसनें किसी बादशाह के य्हाँ नोकरी कर ली। मियाँ जब घर ते निकलौ ओ तब मींयट्टी के पास कुछ तौ अनाज औरु एकु लोटा, दूसरी डोर, तीजौ छाज, चौथा कुत्ता, पाँचवीं बिल्ली यँई सामाँन छोड़ि गयौ। उस मींयट्टी नें कुछ दिन तौ उस अनाज ते औरु कछू दिनाँ मेंहनत-मजदूरी करकें काटे, पर उसी अरसे में लोटा तौ डोर-टूट जाने सें कूआ में गिर पड़ौ औरु बिल्ली मरि गई औरु कुत्ता भागि गयौ। पैहनने के कपड़े भी ऐंसे फटि गए कि बिल्कुल खोंसे गए। सिर्फ एक छाज ई बाके पास रहि गयौ।

बीबी याँनी मींयट्टी को इस बात का तो पतौ थौ ही कि मियाँ जी अमुक बादशाह के य्हाँ नौकर हिंगे। बस बीबी नें सोच-बिचार के मिंयट्टी नें मियाँ जी के लिए खत लिख दीयौ औरु खत में ऐसी बातें लिखीं कि उसके खास मियाँ जी ई समझ सकें। खत में अपनी व मियाँ जी की तौहींन होने की बजह से लोटा का नाम डिब्बन साहब औरु डोर का नाम रूम साहब, व बिल्ली का नाम बिलाव साहब और कुत्ते का नाम कोतबाल साहब तथा छाज का नाम फटकन साहब लिखकर भेज दिया। खत मियाँ जी के पास पहुँचा तो मियाँ जी खत को बाँच कर बड़े उदास भए। तब बादशाह ने मियाँ से पूछा—"कि मियाँ जी, आज आप इतने उदास क्यों ऐं।" झट्ट मियाँ जी ने खत बादशाह के हाथ में दे दिया। बादशाह खत को पढ़न लाग्यौ तौ बादशाह की समझ में और तौ सब खत आ गयौ, पर खत में जो यह लिखा था—"कि घासीराम नें घर घेर लियौ ऐ, डिब्बन साहब डूब गए। रूम साहब बाकी टूट गए। बिलाब साहब मर गए। नमक हराँमी कोतबाल साहब भागि गए। फटकँन साहब बाकी रहे ऐं। सो घड़िया की लड़ाई इधर से उधर और उधर से इधर दोनों से ले रहे ऐं।"

इसका मतलब मियाँ तौ समझ गया था कि घासीराम-घास घर में उपज आई होगी औरु रोटी न मिलने से कुत्ता भाग गया होगा। बाकी रहा छाज सो कपड़े न होने की बजह से मींयट्टी उस छाज को कभी तौ आगे लगा लेती होगी और कभी पीछे। बादशाह नें तौं अपने मन में यही समझा कि यह मियाँ किसी रियासत का मालिक होगा औरु यह मेरे यहाँ छोटे पद पर रह रहा ऐ। इसके यहाँ तौ कई साहब भी घड़ी में रहते थे। ऐसा सोचकर बादशाह ने मियाँ जी से माँफी माँगी औरु कहा—"कि यह बहुत ही अनुचित हुआ जो आप मेरे यहाँ इतने छोटे से पद पर ही रहे ऐं। अब आपको जितनी जरूरत हो उतना ही रुपया ले जाओ और जल्दी ही अपने घर की राह लो।"

मियाँ जी बहुत-सा रुपया लेकर अपने घर पहुँचे और अपनी बीबी के साथ सुख पूर्वक दिन बिताने लगे। ठीक तो है चुतरों की चतुराई को चतुर लोग ही जान सकते हैं।[1]

२९

आंधरौ और रचोंदुआ

एकु गाँम के दो आदमी एकु आँधरौ औरु एकु रचोंदुआ ए वे दोऊ एकु ई गाँम में ब्याहे। एकु दिनाँ वे दोऊ जनें आपुस में बोले—"कै भाई, मरत-जींमत अबकें काऊ दिनाँ चलि कें

१. सं० क०—रामगोपाल शर्मा, मु० ओछटा पो० जमुना जिला मथुरा के संग्रह से।

सुसरारि है ग्राँमें। दूसरौ बोल्यौ—"भाई, बात तो साँची कहत्वै, चलनों चहिएं परि भाई, भारकसु जरूर चहिएं। भाई, मेरें तौ बरध हतें ग्रौरु तू ग्रपनी बैहली ऐ लै चलि।" बानें कही—"भाई, ठीकै।"

ग्रब दोऊ पाग-ग्रँगरखी पैहरि कें टिचँन[१] है कें बैहली लै कें गए। साँझ कूँ म्वाँ पौंहँच गए। नेंक झुकपुकौ सौ है गयौ। एकु बोल्यौ—"भाई, निबटि-फिवटि चलें नहीं म्वांते कोई संग न परचौ तौ जरकटा ग्रटकैगौ।" दूसरौ बोल्यौ—"भाई, बात तौ ठीकै परि मोइ तौ ग्रब कछ दीखतु नाएं। निभटि कें ग्राए ग्रौर बैहली न पाई तौ।" ग्रब बु ग्रब बोल्यौ—"भाई, पाग ते पाग बांधि लें ग्रौर छोर पकरि लें। निभटि कें जब ग्राँमिगे तब घेरि कें पकरि लिंगे।" बिन्नें जिही काँमु करचौ। निभटि कें हात-पाँनी लैकें बैहली कूँ घेरत डोलें परि बैहली तक न पौंहँचे।

इतेकई में बरहे ते कछू ग्रादमी ग्राइ रहे। वे बोले—"तुम को ग्रौ जी, कहा करि रहे ग्रौ। बहली ठाड़ी करि राखी है बरध उकताइ रहे एं। करि कहा रहे ग्रौ तुम।" बे सरँम के मारे बोले—"ग्रजी, ज्या खेतै नाप रहे ऐं। जि तौ कहि रह्यौ है कै डेढ़ बीघे कौ ऐ, मैं कहि रह्यौ ऊं कै जि बीघे-भरि कौ ऐ।" बे बोले—"ग्रजी ग्रा जाग्रौ, जि नंबर तौ बीघे कौ ई ऐ।" बे बोले—"ग्रजी ठैर जाग्रौ, हमऊं चलतें, बैहली में ई बैठि चलियों।" बे बोले—"ग्राइ जाग्रौ तौ।" बे बेहैली के ढिग बाँस के सहारे ते ग्राइ गए ग्रौरु बैहली में बैठि गए।

ग्रब साँम में ग्राए ग्रौर चौपारि के सहारें बैहली छोड़ि दई। बरध बाँधि दए। ग्रापु चौपारि में जाइ बैठे। सुसरारिबारेन्नें बरधँन कूँ भुस डारि दयौ ग्रौरु बिनकूँ हुक्का भरि दीयौ, खाट-बिछैया करि दीयौ।

नेंक ठैरि कें एकु छोरा रोटीन कूँ बोलिबे ग्रायौ। बे रोटी जेंमें गए। जब वे पौरी में पौंहँचे तौ छोरा छोड़ि कें भगि गयौ, वे बिचारे पौरी में ढिबिरियात डोलें। पौरी में नाज की खौ ई, परि खाली परी। बिन मे तें एकु वा खौ में गिरि परचौ। बड़ी देर भई। घर के बोले—"लाला, मैह-माँन ग्राए नाँ नें।" छोरा बोल्यौ—"ग्राइ गए ऐं, पौरी में हुंगे, मेरे संग पौरी तक तौ ग्राए ई हते।" घर के दीयौ लैकें पौरी में गए। देखें तौ एकु खौ में परचौ ऐ। घर के बोले—"ग्रजी कैसें भई। खौ में कैसें गिरि परे।"

बु बोलौ—"ग्रजी कैसें ऊ नाँ भई, ज्यानें माँनी नाँई। मैंने कही खौ खाली परी ऐ ग्रौरु ज्या नें कही कै भरि रही ऐ।" बे बोले—"ग्रजी ग्राजाग्रौ, ग्रब के संबत कहा ऐं जौ खौ भरी जाइ, ग्रब कें तौ पेट भरिबे भारी परि रहे ए। चलौ रोटी सीरी भई जांतिएं।" खौ बारौ बोल्यौ—"नेंकु हातु पकरि लेउ।" हात पकरिकें ऊपरि निकरचौ। ग्रब वे रोटी जैंमे गए। थारी परोसि दई, खीर-पुरी की मैहमाँनी करी, वे जेंमँनु लगे।

बिन कौ एकु पड़ेरू खूट्यौ डोलि रह्यौ ग्रौ। बु बेरि-बेरि जिनके जौरें ग्रा जाइ, बे बाइ बेरि-बेरि टारि दियौ करें।

बिन की एकु बूढ़ी सासु ई, बु ऊ बिचारी ग्राँधरी ई। बु खीरि परोसिबे ग्राई ग्रौरु धरती में करिकें चली गई। बे बिचारे धरती में खाँमन लगे। एकु बेर बु डोकरी फिरि खीरि दैबे ग्राई। बिन्नें जाँनी कि बु पड़ेरू ग्राइ गयौ। जोर ते एक थप्पड़ मारचौ, डोकरी की कँनपटी ए लग्यौ। थप्पड़ के लगत ई डोकरी गैरहोस है कें गिर परी।

बड़ी देर में होसु भयौ। बोली कै—"मैहमाँन, तुमऊं ऐं कमु दीखतु ऐं। बेचारे सरँम के मारें-नेंकु है गए।[२]

[१]. टिचँन—तैयार। [२]. पातीराम ग्रकबरपुर के संग्रह से।

३०

जुगती औरु टल्ली

एक दिनाँ जुगती बोल्यौ टल्ली ते—"कै तू बिनाँ मेरे देखें टल्ल चलाइ ऊ देइ।" टल्ली बोल्यौ—"देखि चलाँगे कै नाँ।" टल्ली चल्यौ और एक अथाँने पै दस-बीस आदमी बैठे तापि रहे ए, सो माँ आपु बु ऊ जाइ बैठ्यौ औरु तापन लग्यौ। नेंक देर पीछें बोल्यौ—"कै सिरदारौ, आजु एकु बड़ौ भारी अचंभौ देख्यौ।" बे बोल्ये—"कहा अचंभौ देख्यौ भाई"। बु बोल्यौ—"अजी राति मैंने आधे सरग कुत्ता रोंमति देख्यौ।" बे बोल्ये—"अरे तौ झूंठा, नेंकु सधि कें ई झूठ बोलि। कहूँ आजु तक ऐसौ भयौऊ ए कै आधे सरग कुत्ता रोयौ होइ, कै राति ई रोयौ ऐ।" टल्ली बिचारौ झकमारि कें म्वाँते डिगरि आयौ।" आइकें उदास बैठि गयौ। जुगती आयौ औरु बातें बोल्यौ—"कहि भाई, टल्ल चली कै नाँ चली। टल्ली बोल्यौ—"भाई, नाँइ चली।" जुगती बोल्यौ—"चलि, अब हमारे साथ चलि, औरु म्वाँई चलि जहाँ कल्लि कही काई औरु बाई बातें फिरि कहियौ।" जुगती औरु टल्ली दोऊ गए और बाई अथाँने पै जाइ बैठे। जुगती बोल्यौ—"चौंजी, कल्लि जाँनें ऐसी कहावात कही।" बे बोले—"बात कही याँनें धूरि, कहूँ कुत्ता आधे सरग रोंमत ऊ हुंगे।" जुगती बोल्यौ—"साँची तौ कही, याँमें कहा झूंठ बोल्यौ ऐ जितौ नेंक ऊ नेंक साँची ऐ। देखौ, राति कुतिया ब्याई सो बाके ल्हौरे-ल्हौरे पिल्ला बाके जौरें डोलि रहे, ऊपर ते एक भैराँनी भई चील आई, औरु पंजेन में एक पिल्ला ऐ दबाई लै गई, सो बु पिल्ला आधे सरग काँइ-काँइ कर रह्यौ ओ। बताऔ सिरदारौ, बु पिल्ला आधे सरग काँइ-काँइ करि रह्यौ कुत्ता नाऔ तौ कोंन ओ। सिरदार बोले—"भाई, साँची कहत्वे। जरूर कुत्ताई रोयौ। ऐसें हमें कहा खबर ई तैनें ई तौ बताई ऐ।" अब जुगती और टल्ली दोंनों अपने-अपने घर कूं आए। जुगती बोल्यो—"कहौ टल्ल चली।" टल्ली बोल्यौ—"चलीं साब, चली।"

३१

जितौ बु चौं, बु तौ जि चौं

एक बिराँमनु परदेसँन कूं गयौ। बाकी बहू और छोरा घर पै रहि गए बु अपनी बहू ते कहि गयौ कि जा छोरा ऐ खूबु अच्छी तरें राखिओ।

बा बिराँमनी कौ एकु गैर आदिमी ते मेलु ओ। बु रोजु बा के जौरें आयौ करतु ओ। एकु दिनाँ एकु रस्ता चलतौ बिराँमनु आयौ और बाई की पौरी में ठहर्यौ। राति कूं बा लुगाई कौ यारु आयौ। जब बे दोऊ खूबु घुलि-मिलि कें बात करिबे लगे, सोई छोरा रोइ उठ्यौ। बाँनें कही—"जारी, अपने छोरा ऐ राखि आ।" बु छोरा के जौरें गई औरु दबदोरि कें सुबाइ आई। थोरी देर पीछें बु छोरा मारि दियौ।

जब भौतु देर है गई, तब बा लुगाई के यार नें पूंछी कि—"री, तेरे छोरा ऐ भौतु देर है गई रोयौ चों नाँएँ।" बाँनें कही—"तोइ का फिकिरि परी ऐ, सोइ रह्यौ होइगौ सौतेला।" बानें कही—"अरी नाँ, ला देखि आऊँ।" बु देखिबे गयौ, पीछें ते बु लुगाई ऊ तरबारि लेकें गई औरु झट्ट एक ई हाथ में बाकौ मूंड़ भुट्टा-सौ उड़ाइ दीयौ। फिरि फावरौ लाइ औरु कोठे में गड्ढौ खोदि कें अपनों छोरा औरु अपनौ यारु गाढ़ि दए। बु बिराँमनु जो बाकी पौरी में ठैर्यौ काऔ जा सबु कौतक ऐ देखि रह्यौ।

सबेरे होंते बु बिराँमनु उठिके चलि दीयौ।

(२)

आगें चल्यौ सो जाइ कें एक सराइ में ठहर्यौ। ईसुर की ऐसी करनी भई कै बाई दिनाँ बु बिराँमनु आयौ औरु बाई सराइ में ठहर्यौ दोऊँन कौ भेंटौ है गयौ। बा बिराँमनु नें कही—"यार,

जमाँनौ बड़ौ बुरौ आइ गयौ ए। कालु राति कूँ हमनें बड़ौ भैंतुकालु[1] देख्यौ ऐ।" बाँनें पूँछी—"भाई, कहा बात ऐ।" बाँनें बाते सबु किस्सा कहि दीयौ। अब बा बिराँमनु ऐ कछ सुभा भयौ, बाँनें कही—"यार, चलि मोइ बा घर पै लै चलि, मोइ दिखाइ अ।"

बे दोउ बा सैहैरपनाँ में आए। बाँनें घरु बतायौ और खुदि बा पौरी में ठैरि गयौ। बाकी लुगाई नें पूछी—"कै आइ गए का।" बाँनें कही—"आइ गए"। थोरी देर बैठि-उठि कें पूँछी—"छोरा कहा गयौ।" बाँनें कही—"याँई कहूँ खेलि रह्यौ होगौ।" फिरि बाँने कही—"ला, फाबरौ लै आ। जो मालु-मतौ लायौ काऊँ बाइ गाड़ि दें।" बु फाबरौ लै आई।

बाइ बा जगें की तौ खबरि ई, बानें म्वाँई खोदिबौ सुरू कर्‌यौ। सोई बा लुगाई नें पीछें ते तरबारि मारी औरु बु ऊ मारि कें गिराइ दीयौ औरु हल्ला मचायौ कै "मेरौ मालिकु चोट्टाननें मारि दीयौ।" सोइ म्वाँ लोग-बाग इखिट्ठे भए अब बा लुगाई नें कही—"कै, मैं सती हुँगी।" कुनबा-गोताकेन नें नाँहीं-नूंकर करी, परि बु न माँनीं।

चिता रची बा पै बाँम्हन की ल्हास धरि दई औरु बु बिराँमनी ऊ बैठारि दई। अबु बिराँमनु पौंहच्यौ औरु बा नें जाइ कें बाते पूछी—"री, तैनें अपनों छोरा मारि दीयौ, अपनों मालिकु औरु अपनौ यारु ऊ मारि दीयौ औरु अब ऐसी धरमेस्सुरी बनी ऐं कि अपने मालिक के संग सती होति ऐं, जि कहा बात ऐ।" बाने ज्वाबु दीयौ—"कै, जा बात कौ ब्याँनु[2] मेरी माली की भाएली ऐ, बु देगी।" बिराँमनु जि सुनि कें बा मालिन के जौरें आयौ।

(३)

मालिन ते जाइकें बाँनें सबरी औखता कही। मालिन नें कही कै चिंता मति करै या कौ म्याँनों में दुंगी।"

एक दिनाँ मालिन जादूगरनी नें बिमाँनु मँगायौ औरु बा में बिराँमनु कूँ बैठारि के इंदर के अखाड़े में लै गई औरु बाइ परी और अपसराँनु कौ नाँचु दिखायौ। थोरी देर में बा बिराँमनु ऐं उतारि लाई।

अब तौ बु बिराँमनु हाइ परी, हाइ परी किल्लाइबे लग्यौ। मालिन नें कही—"कै बु परी अब नाँइ मिलनी।" बिराँमन नें पूछी—"कब मिलैगी।" तौ मालिनि नें कही—"तुम अपने पैहलौठी के छोरा की चौमुंडी पै बलि चढ़ाइ देउ, जब मिलैगी।" बिराँमनु राजी है गयौ।

बाकौ पैहलौठी कौ छोरा अठारें बर्स कौ ओ। दूसरे दिनाँ बिराँमनु बाइ लैकें चौमुंडी कें मंदिर में गयौ औरु काटिबे कूं तैयार है गौ। सोई मालिनि नें जाइकें बाकौ हातु पकरि लयौ औरु कही—"महाराज, लेउ अब में तुमें बा बात कौ म्याँनों दैति ऊँ। जि आगि ऐसी ई भयौ करति ऐ। जा अगि कें पीछें तुम अपने ज्वाँन-जमाँन बेटा ऐ मारिबे तैयार है गए, बाई आगि में बाँनें अपनों बेटा मार्‌यौ औरु डर के मारें अपनों यारु औरु अपनों खसँमु मारि दीयौ।" बिराँमनु चुप्प है कें अपने घर कूँ चल्यौ आयौ[3]।

[1]. भयानक कांड। [2]. विवरण (उत्तर)। [3]. सं० क०—चंद्रभान : लोहबन अपनी अंमा से सुनी।

ब्रज : लोकोक्तियाँ

ब्रज-साहित्य में लोकोक्तियों—कहनावतों का भी अक्षय भंडार है। ये लोकोक्तियाँ ब्रज-साहित्य के आदि रूप 'गेय-पदों' (सूर-काल से भी प्रथम) से लेकर 'रीति-काव्यों' में भरी पड़ी हैं। यहाँ तक कि एक कवि ने तो केवल लोकोक्तियों के सहारे ही रीति-परंपरानुसार 'नायिका-भेद' की रचना कर डाली है। अस्तु, यहाँ उन सबका चयन न कर केवल 'सुकवि जगतानंद' कृत 'सौ बातँन की बात' या 'दशम-स्कंध (भागवत) उपखान' की सभी लोकोक्तियाँ दी जा रही हैं। इन सभी कहावतों का चयन और संपादन जवाहरलाल चतुर्वेदी ने किया है।

अ

१. अंधौ बाँटै जेबरी, पाछें बछरा खाइ।
२. अपनी ओर निबाहिऐ वाकी वौ जानें

आ

३. आँखिन देखें चेतनाँ, मुख देखें ब्यौहार।
४. आगि-लगंते झोंपरे, जो निकसै सो लाभ।
५. आते कों सँहजा कहैं, जाते कों कहैं मुक्त।
६. आयौ नाग न पूंजिऐ, बाँबी-पूंजन जाइ।
७. आवैं-जाँइ सु हरि के लेखें।

ए

८. एक पंथ द्वै काज।

क

९. कंगँन देख्यौ हाथ में कहा आरसी ताहि।
१०. करै-करावै आप ही, सिर औरँन के देइ।
११. कहूँ-कहूँ गोपाल की गई सिट्टल्ली भूलि।
१२. किस बिरतें[1] पर तत्ता पाँनी।
१३. कूआ-पाँनी, कुगँन-धँन, गल-बाँधें निकसाइ।
१४. कूआ में कौ मेंड़का, करै सिंधु की बात[2]।
१५. कूकुर चौक चढ़ाई ऐ, चाकी चाटँन जाइ।
१६. कै गुर जाँनें कोथरा, कै बनियाँ की हाट।
१७. कोऊ रूख जहाँ नहिं, तहाँ अरंडै[3] रूख।
१८. कौड़ी नाँहीं गाँठ में करै ऊँट कौ मोल।
१९. कौड़ी नाँहीं गाँठ में चले बाग की सैर।
२०. कौड़ी मार बिटौरा चूकै।

ख

२१. खाँएँ-पिएँ बधाँमनों, सिर-चुपरें त्यौहार।

ग

२२. गई छठी कौ बाँनियाँ, गुड़ दै पिन्नी खाइ।
२३. गई बात रे पाँहुने, घी-दै, आँन्यों तेल।
२४. गधा चढ़े पाँचौ असवार।
२५. गाडर आँनी ऊँन की, बाँधी चरै कपास।

घ

२६. घर के घर, बाहर के बाहर।
२७. घर कौ जोगी जोगनाँ, आँन गाँव कौ सिद्ध।
२८. घी सोंधौ जौ देखिऐ, कहि गोबर सौ कोथ।

च

२९. चली छाछ कों नागरी, पाछें पीठि कँमोरि।
३०. चारि दिनाँ की चाँदनी, फेरि अँधेरी रात।
३१. चेरी लातँन-कूटिऐ, दह्यौ गुसाँइन खाइ।

छ

३२. छाँड़ें बनें न संग्रहै, ज्यों कुल-माँहि कपूत।
३३. छोटे मुंह बड़ी बात।

ज

३४. जग में देखी रावरे, मुख-देखे की प्रीति।[4]
३५. जाके सिर पै बोझ है, सोई करै निबाह।
३६. जाकों कोऊ गिनें न गूँथै, सो लाड़ो[5] की भूआ।
३७. जे हरिआई गौं[6] चरें, ते क्यों चरें पियारि।
३८. जैसेई कंता घरे रहे, तैसेई रहे बिदेस।
३९. जैसौ देखौ चोल्हरा, तैसौई बन्यों बनाव।[7]
४०. जैसौ देखौ साँथरौ, तैसौ पाँइ पसारि।[8]
४१. जो दिन जाँइ अँनंद सों, जीबँन कौ फल सोइ।

[1]. पाठां०—बित्ते। [2]. कहै समुद्र की०। [3]. तहाँ अंड कौ०। [4]. कहति ग्वालिनी रिसभरी, मुख-देखे०। [5]. सो लाला०। [6]. कों चरें। [7]. बन्यों बिसाहु। [8]. जैसी देखौ साँथरी, तैसेई पाँइ०।

४२. जो है दाझ्यौ दूध कौ, पीवै फूँकें छाछ।
४३. जौ गदहा हर-जोतिऐ, तौ क्यों लीजै बैल।
४४. ज्यों-ज्यों भींजै कामरी, त्यौं-त्यौं भारी०।

ट

४५. टट्टू-मारें ताजी त्रास।[1]

ठ

४६. ठाली नाँइन मूँड़ै पटा।

ड

४७. डेढ़ बकाँइन देखिऐ, मीयाँ बैठे बाग।[2]
४८. डेढ़ सुहारी छाक में, परसे ही ते गीत।

ढ

४९. ढाक चढ़त बारी गिरै, करै राव सों रोस।

त

५०. तेरे घाले घलि गए, काँदा-खाँनीं राँड़।
५१. तोहि बिराँनी का परी, तू अपनी निरखेर।

द

५२. दुधार गाइ की लातहु भली।
५३. देत न बनें बुनाँमनी, हरचौ लगावै सूत।[3]

ध

५४. धोबी कौसौ कूकरा, घर कौ भयौ न घाट।
५५. धोबी-बेटा चाँद-सौ, सीटी और फटाक।

न

५६. नए चिकनियाँ, बगल में ईंट।
५७. नदी-किनारे रुखड़ा, जब-तब होइ बिनास।
५८. नाँच न आवै, आँगन टेढ़ौ।
५९. नाँचन निकसी तौ भलें, घूंघट काहे देति।
६०. नाँचै-कूदै बाँदरा, टूक जोगनाँ खाइ।
६१. नाऊ बार कितेक हैं, आगें परि हैं आइ।
६२. नाज बौहरौ लै गयौ, भुस लै गई बियार।
६३. नाँतरि तोहि सँघारि हों, गुड़ दै काँने साह।

प

६४. परखैया कौ दोष का, अपनों खोटौ दाँम।
६५. पाँनी में की बास है, करै मगर सों बैर।
६६. पिसनहारी के छोहरा, चाबैनाँ कौ लाभ।

ब

६७. बरस दिनाँ के कातनें, एकै कपरा होइ
६८. बाप न मारी मेंड़िकी, बेटा तीरँनदाज।
६९. बाप बिनौरा बापुरौ, पूत भयौ चौतार।
७०. बूढ़ौ बरद, पाट की नाँथ।
७१. बैठे ते बेगार भली।
७२. बैल न कूद्यौ, कूदी गोंन।

भ

७३. भात-लपेट्यौ साग है, साग लपेट्यौ भात।
७४. भुस-ऊपर कौ लीपनों, ज्यों बारू की भीत।
७५. भेड़ जू माँती देखिऐ, मेंगनि माँती देख।

म

७६. माँगै भेंस रुकाँमनी, करै पड़ा कौ मोल।
७७. मार बफाती खीचरी, यै घर आज न काल।
७८. मारचौ घोंटू आइ कें, फूटचौ जाइ लिलार।
७९. मूँग-मोंठ में कोंन बड़ौ।
८०. मैहता दुरे पयार में, को कहि बैरी होइ।
८१. मो पिय बात न बूझहीं, धन्य सुहागिनि-नाँम।
८२. म्हों में राँम, बगल में छुरी।

र

८३. रोवै कोऊ मुड़ामनी, कोऊ रोवै मूड़।

ल

८४. लगि जैहै तौ तीर, नातरु तुक्का जाँन।
८५. लरिका रोवें माँड़ कों, माँगें पितर सराध।
८६. लाड़ें आई डोकरी, लागी गूदर खाँन।
८७. लेहु परौसिन झोंपड़ौ, नित उठि करती रार।
८८. लैहगा-टाट, पाट की तनी।

स

८९. संपत होइ तौ घर भलौ, नातर भलौ बिदेस।
९०. साँप जो मारौ चाँहिऐं, दियौ पाँहुने-हाथ।
९१. सात मामा कौ भाँनजौ, सदाँ मरै है भूँख।
९२. सीखै बेटा नाऊ कौ, कटै बटोही जाँन।
९३. सूने घर कौ पाँहुनों, ज्यों आवै त्यौं जाइ।
९४. सूनों घर भिड़यँन कौ राज।
९५. सोई नारि सबते बड़ी, जाकी कोठी ज्वार।
९६. सोंनों और सुगंध।
९७. सौ गाहा सूआ पढचौ, अंत बिलाई खाइ।
९८. सौ बातँन की बात।

ह

९९. हँसिया निगलत ही सुख पइ है।
१००. हटुवा बैठँन देति नहिं, कहै झुकतौ-सौ तोल।
१०१. हरियाई के संग में, कपिलाहू कौ नाँस।

1. दूसरा रूप—काजी-मारें, तुर्की काँपै। 2. भेंड़ बगाइन दे०। 3. पाठां०—बुनवौ न आवै, हरचौ बतावै०।

ग्राम्य-लोकोक्तियाँ

संकलन-कर्ता--बालमुकुंद भारद्वाज

अ

१. अधरँम धँनु फलतु ऐ, पाँच बरस या सात बरस ।

२. अन्न-धँन अँनेक धँन, सोंनों-चाँदी आधौ धँन, पूँछि किरामत नास-धँन ।

३. अपनी-अपनी तूती औ अपनों-अपनों राग ।

४. अपनेई मरें सरग दीखत्वै ।

५. अपनोंई दाँम खोटौ तौ, परखँनवारे ऐ कहा दोसु ।[1]

६. आँखि कौ काजर, नाँक कूं भारी होइ है ।

आ

७. आँनहार बहू, बहेड़ाऐ स्याँप बतावै ।[2]

८. आप काज, महा काज ।

९. आयौ और बरात कों, दूल्हे गाजर खाइ ।

१०. आलस-नींद किसाँनें खोवैं, चोरें खोवै खाँसी । टका-ब्याज बाबाजी ऐ खोवै, राँड़ै खोवै हाँसी ।।

११. आस विराँनी जे करें, सो जींमत ई मरि जाँइ ।

उ

१२. उधारिया, पासंगै नाँप देखै ।

ऊ

१३. ऊधौ कौ लेंन, न माधो कौ देंन ।

ए

१४. एकुतौ बुरी, औरु बुरेई गीत गावै ।

१५. एकु पूत मति जँनमें माइ, घर रहै कै बाहर जाइ ।

१६. एकु लटी द्वै असाढ़, काँनी आँख चँमकदार । चारिबे गई दूरि कौ हार ।।

१७. एकु लिखतँम, सौ बकतँम ।

ऐ

१८. ऐसीई नकटी देबी औरु ऐसौई पेटू पुजारी ।

ओ

१९. ओछे की प्रीति, झोल[3] कौ तापनों ।

२०. ओछौ बास, कुल कौ नास ।

२१. ओड़, गड़रिया, नाऊ, जि भेद न दिगे काऊ ।[4]

क

२२. कंधा-धरि लई झोरी, चँमारु गिनें ना कोरी ।

२३. कँमीनयार, कुंद-हथियार, कबऊँ न उतरै पार ।

२४. करकेंटा की चोट बिटौरा पै ।

२५. करनीं तौ जोई करै, जाके कुल बनि आई होइ ।

२६. करँम धनी कौ, जसु लटियाई कौ ।

२७. कहे ते कुँम्हारु गधा पै नाँ चढ़ै ।

२८. कागा हंसु न गधा जती ।

२९. काठ की तौ एकु ई पोत चढ़ै ।

३०. कारौ अच्छहू भेंस-बराबरि ।

३१. किसबी किसबु करै तौ छजै, नाँई तौ मूंड़-मोंगरा बाजें ।

३२. कूआ की माँटी कूआ ई में लगि जाऐ ।

३३. कोरिया की छोरी, केसरु कौ तिलक ।

३४. क्वारी कन्या, सेंस[5] बर ।

३५. कौवा हंस, न बगुला जती । (बनि-ब्यौपारी)

ख

३६. खेती, खसँम सहेती, धँन आस-पास ।

ग

३७. गँमार की टाँटि में अकलि होइ है ।

३८. गधा न कूदी, कूदी कौन ।[6]

३९. गधा ना ओ, रेंगटा ओ ।[7]

४०. गयौ मरद जाँनें खाई खटाई, गई राँड जाँनें खाई मिठाई

४१. गई दुकाँनु जहाँ भई अथाँई ।

४२. गाँम कौ जोगी जोगनाँ, आँन गाँम कौ सिद्ध ।

४३. गाँम में ढूसर, बाड़े में ऊसर ।

४४. गाड़ी ऐ देखिकें लाड़ी के पाँम फूल जाऐं ।

४५. गाड़ीबारे की नारि जँनम दुखिया ।

१. अपनोंई दाँम खोटौ होइ तौ परखँनबारे ऐ कहा लगत्वै । २. जाँनहार बहू बड़ेड़ा ऐ स्याँप बतावै । ३. फूंस कौ तापनों । ४. जति-संबंधी । ५. सहस्र का ब्रजभाषा रूप । ६. पाठां०--गधा न कूद्यौ, कूदी गोंन । ७. गधा नाँऊ, रेंगटाऊँ ।

४६. गिनें न गूँठे में लाला की भूश्रा ।[१]
४७. गुरु-खाँइ गुलगुलनु तें आँनि करें ।

घ

४८. घरु आँएे नाग न पूँजिऐ, बाँबी पूँजन जाइ ।
४९. घरु खीरु तौ बाहरु खीरु ।
५०. घरु-घरु चूल्हे माँटी के ।
५१. घरु-घरु देखौ, एकु ही लेखौ ।
५२. घी सँमारै रसोई, नाँमु बहू कौ ।
५३. घुटचौ बाबाजी. पिसी दवाई, इनकी-साख कहा पै भाई ।
५४. घुड़-सबार गिरि परै, गिरै का पीसँनुहारी ।
मायाधारी लुटै, लुटै का जँनमु-भिकारी ।।
५५. घ्यौ कहाँ गयौ, बैसाँदर में ।
५६. घ्यौ न खायौ कुप्पा ई बजायौ ।

च

५७. चलि बौ तौ सड़कु कौ, चाएें फेरुई चों न होइ ।
रहिबौ तौ भैयाँन कौ, चाएँ बैरुई चों न होइ ।।
५८. चलिबौ भलौ न कोस कौ, दुहिता भली न एकु ।
करजा भलौ न बाप कौ, जौ हरि राखै टेकु ।
५९. चारि पैसा की हँड़िया तौ फूटी, परि कुत्ता की जाति पैहचाँनी गई ।
६०. चारि मरिंगी राँमजनी, जब एकु मरैगौ जिंदा ।[२],
६१. चारि महीनाँ ताल कौ, चारि महीनाँ हाल कौ।[३]
६२. चालनी में धार काढ़ै, कर में टटोरै ।
६३. चीजु गँमावै अपनीं, चोरैं गारी दें ।
चोरु बिचारौ कहाकरै, जब धँनीं खबरि ना लेइ ।।
६४. चोरुवै तौ पिटतौ देखै, खाँमतौ न देखें ।
६५. चौमाँसे के रिपटे कौ औरु राज के पिटे कौ डरु नाएें ।

छ

६६. छाछि-माँगन चली पींठि-पीछें धोंनाँ ।[४]

ज

६७. जब ई भेड़ु पसरु कूँ निकरी, तब ई लै गयौ ल्यारी ।
६८. जब ई मुड़िया नें मूंड़-मुड़ायौ, तब ई परि गए ओरे ।
६९. जब गीदरा की मोंतु आँमत्वै तो गाँमु-साँमई भागै ।
७०. जबरदस्त कौ ठेंगा सिर-परु ।
७१. जमीन-जोरू जोरु की, जोरु-घटे पै औरु की ।
७२ जाँन न पैहचाँनु, चारि महीनाँ साझें रहि जाँन दै ।
७३. जाकी ती हरेनु में ई फूटी ऐं ।
७४. जाकी नारि सुलाखिनी, जाके कोठी धाँनु ।
७५. जा कौने जौ ब्वाके द्वार ।
७६. जाकौ बँनियाँ यारु, बाइ दुसमनु का दरकार ।
७७. जा घरु-नाँएें बड्डा, सो घरु डिग्गँम-डिग्गा ।
७८. जाट, भिखारी, भिड़हरा, बार न जाँनें कुबार ।
७९. जैसी तेरी कौमरी, वैसे मेरे गीत ।[५]
८०. जैसे चले बाबुला, वैसे चले काबुला ।
८१. जैसौ गुरु डारैंगी, वैसौई मींठौ होइगौ ।
८२. जैसौ देसु, वैसौ भेसु ।
८३. जोरु-जोरु मरि जाइगौ, मालु जँमाई खाइगौ ।

झ

८४. झूंठा खईऐ मींठे कूं ।

ट

८५. टाँट-पिटाँमनीं डोकरी, चूल्हे कूं डंडौत ।

ठ

८६. ठाली बहू के नोंन में ई हाथु ।

त

८७. तींनुपा चूंन, पुल पै रसोई ।
८८. तेरी मानें खसँमु कियौ, बुरी करी जौ छोड़ दियौ ।
८९. तेलु तौ तिलीनु में ते ई निकरै ।

थ

९०. थोथौ फटिकै उड़ि-उड़ि जाइ ।

द

९१. दतुला-खसँमु की हाँसी न साँसी ।
९२. दस रोकु, न बीसु उधारु ।
९३. दादी धँन्नों, एकुई खँन्नों ।
९४. देबी दिनु काटै औरु पंडा परचौ ई माँगै ।
९५. देसा-देसा ढारु, कुला-कुला ब्यौहारु ।

१. कोई गिनें न गूठे परु मैं० । २. पाठां०—चार मरेंगी रामजनी तब एक मरैगौ बंदा । ३. पानी के विषय में । ४. पाठां०—पींठ-पीछें दोंनाँ । ५. पाठां०—जैसी तेरी तूंमरी० ।

ध

९६. धींगरा धींगरई, बलूके कौ राजु।
९७. धोवती के भीतरु सब नंगे।

न

९८. नगँनु कें नंग आए, पैहरें बैठे झंग।
९९. नंग बड़े परमेसुर ते।
१००. नंगा कौ चौरे में मवासो।
१०१. नंगी कहा न्हाइ, कहा निचोरै।
१०२. नंगी नाँचै धँमा को होइ।
१०३. न आँधरे ऐ नौतौ न दो जँने आँमें।
१०४. नई दुकाँनु तिबरसो गुरु माँगै।
१०५. नई नाँइन बाँसु को नहन्नाँ।
१०६. नाँचवौ तो जाँनें नाँइ, आँगनु टेढ़ौ बतावै।
१०७. नाँचा, बाँचा ओरु पुजारी, इन्हें छोड़ि कीजै ब्योहारी।
१०८. नाँदान की यारी औरु जी कौ जंजाल।
१०९. नाँद कौ जबाँन ढोक-सा।
११०. नाँनी की लच्छि धेबते पै।
१११. नाँनी तौ पूत करै, धेबतौ डंड भरै।[1]
११२. नाँ बाबा आवै, नाँ घंटा बाजै।
११३. नाँमु गरीबा, बगल में ईंट।[2]
११४. नाँमु दरोगा धद्दे[3], चाएँ तनखा कछुई मति देइ।
११५. निसकु को, भरभूजँनु।
११६. निसकुती लुगाई, देसु की भाभी।
११७. नेंगी ऐ तौ पीरे टकाँनु ते काँमु,
भलेंइँ पट्टाई बैठी राँड़ है जाइ।
११८. नेंगो भलो कै छींके पाँमु।[4]

प

११९. पढ़्यौ तौ ऐ परु गुँन्यों नाँएँ।
१२०. पयौ न पीस्यौ, आयौ ई दीख्यौ।[5]
१२१. परायौ पूत परदेसी दाखिल होइ।[6]
१२२. परायौ मनु परदेस-बराबरु।
१२३. पाँच पंच मिलि कीजै काजु, हारें-जीतें न आवै लाज।
१२४. पींठ में लट्टू भवानी करै, सबरौ घर पूजा कूँ चलै।
१२५. पूत के पाँमु पालने में दीखजाँवें।
१२६. पैसा स्वाद कूँ, कै बाद कूँ।

ब

१२७. बर रहै, बराती रहैं, परि माँगे झगाबारौ-क्यों रहै।
१२८. बाँमन-नाऊ-कूकरा ए जाति-देखि घुर्राऊ।
१२९. बासी बचै न कुत्ता खाइ।
१३०. बिटौरा में ते ऊपरा ई निकरें।
१३१. बिनाँ बुलाएँ जाइ टाड़ें-टाड़ें गावै।
१३२. बिसु देइ परि बिसवास न देइ।
१३३. बींनें कंडा, गावै भात ई।
१३४. बुही छिनरा बुही डोला के संग।
१३५. ब्याज-भाड़ौ-दच्छिनाँ, पीछें रहै सो कच्छ नाँ।

भ

१३६. भरै न भरँनु देइ।
१३७. भीतु फूटें, भीतनाँ ई बनें।
१३८. भूत-बिद्या-मलई, बारह बरस चल लई।
१३९. भैया काठी में कै लाठी में।
१४०. भैं सोवै, भूंखन मरै, जमैं की बैहैंन बरात।

म

१४१. मति बारे की मा मरौ, मति बूढे की जोइ।
१४२. मन चंगा तौ कठौती में गंगा।
१४३. मन भोगिया, करँमु दरिद्री।
१४४. माँनि न माँनि मैं तेरो मैहमाँन।
१४५. माँनें तौ देउ, नाँई तो भीत कौ लेउ।
१४६. मा तौ डोलै पुथी-पुथी कूं पूत बिटौराई बक्सै।
१४७. मा तौ मरी धीअ कूं, धीअ मरी धोंगराँन कूं।
१४८. मुँह मारे कौ बागड़ी, बैलाए कौ जार।
१४९. मैंनाँ-गूजर कंजर, कुत्ता-बिल्ली-बंदर।
जो ए छै नाँ होवें, तौ खोल किबरिया सोवें॥

र

१५०. रँडुआ की बेटी, कहा जाँनें कुनबा की सारि।
१५१. रँन जाइ न राउर जूझे।
१५२. रहिऐ भुक्ख तो रहिऐ सुक्ख।
१५३. रहै तौ रँडुआ रोटी खाइ, जाइ तौ रडुआ का लै जाइ।

१. पाठां०—नानी खसँमु कर, धेबतौ०। २. पाठां०—नाँम धनिआँ, बगल०। ३. धरिदै—धरदे। ४. पाठां०—नंगी भली कै छींकें पाँइ। ५. जो महमान जल्दी-जल्दी आ जाता है, उस पर। ६. पाठां०—अपनों पूत लुकायौ, दूसरे कौ धींगरा।

१५४. राँड़ के पाँम सुहागिलु लागी है जा भेंनाँ मो-सी।

१५५. राँड़ ते ग्रागें कोसनों नाँ, ग्रोरु साँझ ते ग्रागें ग्रबार नाँ।

१५६. राँड़ तो बुढ़ी जाकौ भैया मरि जाइ, खसँमु तो दूसरौ ऊ करि ले।

१५७. राँड़ न माँनें बीनती, चनाँ न माँनें जोत।

१५८. राँड़ रँड़ागो जब काटै तब रँडुग्रा काटँनु देंइ।

१५९. राँड़, साँड़ ग्ररु ग्रंना भेंसा, बिगरि जाँइ तौ होवै कैसा।

१६०. राजा कौ दाँन, परजा को न्हाँन, बराबरि होइ।

१६१. राजा है चोरी करै, न्याब कोंन घर जाइ।

१६२. रिपटि परे की हरि-गंगा ऐ।

ल

१६३. लठ्ठा मारो पाँसुरी, भरि-भरि धोंनी देइ।

१६४. लपसी ते तो भेंटा नाँइ होइ, फिरु दिलद्दर की जेटु क्यों छोड़ै।

१६५. लाखु जाट पिंगल पढ़ै, परि एकु भुच लागी रहै।

१६६. लेंनाँ एक, न देंनाँ द्वै।

ब

१६७. वा दाता ते सूँम भलौ जो पैहलें ईं करि दे नाँईं।

स

१६८. संजोगी कौ जाँमु, कबऊँ न ग्राबै काँमु।

१६९. सदाँईं चराँईं बालमाँ, इनकी बादर माँऊँ पूँछ।

१७०. सब राति पीस्यौ ग्रोरु परिया में सकेरै।

१७१. सबरी राति रोई परि एकु ई मरचौ।

१७२. सबेरे कौ मेहु, साँझ कौ मैहमाँनु टार ते नाँइ टरै।

१७३. समुझै सोई हारै।

१७४. साँमनु के ग्राँधरे ऐ हरचौ ई हरचौ सूझै।

१७५. सात-पाँच की लाकड़ी, एक जने कौ बोझु।

१७६. सुतैमनि तो बौहतेरीं, परि छोंकू का खसँमु के हाड़।

१७७. सेर के तो लटकते ई ग्राँमें ऐं।[1]

ह

१७८. हंते कूँ हँनिऐं, पाप-दोष नाँ गिनिऐं।

१७९. हाँ कौ मरै, नाँ कौ जीबै।

१८०. हाकिमु की ग्रगारी ग्रौरु घोड़ा की पिछारी न ग्राबै।

[1]. सस्ता—थोड़े मूल्य में बहुत मिलने पर।

(ओ)

ब्रज-मंडल के मेले और उत्सव

यदि हम मथुरा की सीमाओं को 'ब्रज-मंडल' मान लें तो इन मेलों का विवरण एक नवीनता रखता है। विशेष रूप से ये मेले श्री कृष्ण तथा अन्य देवताओं से संबंधित हैं। यही नहीं मेलों के साथ-साथ उत्सव भी बढ़ गये हैं। इसलिये यह उचित होगा कि उनका पृथक्-पृथक् विवरण दिया जाय। ये मेले तिथि और मास में अनेक विधियों से रचे जाते हैं। चैत्र से फाल्गुन तक का ब्यौरा निम्न लिखित है। प्रत्येक मास के अतिरिक्त इनका प्रबंध स्थान से भी होता है। मथुरा-मंडल वनों, उप-वनों का प्राचीन केंद्र और कूपों, नगरों, तड़ागों आदि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्रभु की परम पावन इस जन्म-भूमि की महिमा जानने का किसे चाव न होगा?

"नाराइन ब्रज-भूमि कों सुर-पुर नावें माथ।
जहाँ आइ प्रभु अवतरे, श्री कृष्णचंद्र ब्रजनाथ।।"

यदि इस प्रकार की निष्ठा रखकर इन मेलों का आनंद प्राप्त हो तो उसकी भावना का प्रगट करना असंभव है—

"नाराइन यह प्रेम सुख, मुख सों कह्यौ न जाइ।
ज्यों गूँगौ गुड़ खात है, सैनँन स्वाद लखाइ।।"

इस दोहे के अनुसार मुख्य स्थान ये हैं—

"ब्रज-चौरासी कोस में, चार गाँम निज धाँम।
बृंदाबन औरु मधुपुरी, बरसाँनौं, नँदगाँम।।"

प्रसिद्धि की दृष्टि से यहाँ सर्व प्रथम मथुरा का वर्णन किया जाता है।

मथुरा

चैत्र शुक्ल षष्ठी को श्री यमुना जी का जन्मोत्सव-मेला होता है। श्री विश्रामघाट पर फूल-बंगला व गीतों आदि का प्रबंध बड़ी श्रद्धा एवं उत्साह से होता है।

१. राम-नवमी—रामजी-द्वारा।
२. जैन तीर्थकर महावीर का मेला चौरासी में।
३. गंगा दशहरा—यमुना-स्नान।
४. जन्माष्टमी।
५. दशहरा—पाँच दिन तक महाविद्यालय के मैदान में।
६. दीपावली।
७. यमदुतिया।
८. मोहर्रम।
९. हर एकादशी को मथुरा की परिक्रमा की जाती है।
१०. गोपाष्टमी-गोचारण का मेला कार्तिक सुदी ८ को होता है।
११. अक्षय नवमी को भी मथुरा की परिक्रमा की जाती है।
१२. देवोत्थान एकादशी को युगल-जोड़ी की परिक्रमा की जाती है।
१३. कार्तिक पूर्णिमा—यमुना-स्नान।
१४. वसंत पंचमी—श्री केशवदेव जी का मंदिर।

१५. सलूना––श्रावण पूर्णिमासी। श्री केशव देव जी का मंदिर।
१६. कातिक शुक्ल सप्तमी––धोबी-बध।
१७. कातिक शुक्ल दशमी––कंस-बध।
१८. अश्वनि-कृष्ण पक्ष अष्टमी, परिक्रमा मथुरा की पाँच रोज।
१९. साँझी ।
२०. राम-लीला।
२१. अश्वनि शुक्ल पक्ष एकादशी––भरत मिलाप।
२२. अश्वनि शुक्ल १५––शरद-पूर्णिमा ।
२३. कातिक प्रतिपदा अन्नकूट का मेला ।
२४. यमदुतिया ।
२५. असाढ़––देव-सोमती एकादशी ।
२६. फाल्गुन शुक्ल पक्ष नवमी––बहू जी के बाग की होली।
२७. चैत्र कृष्ण पक्ष १––केशव देव जी के मंदिर का मेला।
२८. चैत्र कृष्ण १ से ११ तक––फूल डोल का मेला।
२९. वैशाख कृष्ण ३––अक्षय तृतीया का मेला।

मथुरा में श्री द्वारिकानाथ जी, श्री मदनमोहन जी, तथा श्री दाऊ जी के मंदिरों में उत्सव और मेले होते हैं। ये उत्सव ब्रज-वासियों की अभिनंदनीय भगवद्भक्ति के लिये प्रसिद्ध हैं, जो किसी भी उत्सुक व्यक्ति को आकर्षक और रोचक लगेंगे। एक उत्सव वसंत के दिन से ब्रज-विलास के कीर्तन का प्रारंभ होता है और पूरा होने पर नगर कीर्तन होता है।

कातिक शुक्ल पक्ष १––अन्नकूट, ९ बजे गिरिराज-पूजा, दो बजे से चार बजे तक परिक्रमा होती है। फिर अन्नकूट के दर्शन। भैया-दूज।

अष्टमी––गोपाष्टमी-उत्सव गायों की पूजा, भगवान का गोचारण। एकादशी और द्वादशी को झाँकी होती है।

अगहन सुदी १२––व्यंजन-द्वादशी ।

पौष कृष्ण सप्तमी––श्री द्वारिकानाथ जी का छप्पन भोग।

पौष शुक्ल दशमी––प्रत्येक रविवार, पूर्णिमा और अमावस्या को सूर्योदय से पहले राज-भोग होता है। माघवदी अमावस्या और नवमी को मंगल-भोग होता है।

बसंतोत्सव––श्रीजी की होली का खेल––गुलाल, अबीर और चंदन की होली। शयन के पश्चात् श्री भागवत का पूजन ।

माघ-पूर्णिमा––को ढोल-ढप पर स्वाँग होते हैं।

फाल्गुण कृष्ण सप्तमी––श्रीनाथ जी का पाटोत्सव, श्री चरण का दर्शन।

फाल्गुण कृष्ण अष्टमी––श्री यमुना जी पधारती हैं और रंगीली होली का उत्सव।[1]

फाल्गुण कृष्ण एकादशी––कुंजोत्सव।

फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी––बगीचे का उत्सव (मंदिर में)।

फाल्गुणी अमावस्या––होली पूजन ।

चैत्र कृष्ण १––दोलोत्सव, ४ झाँकी।

[1]. इस दिन श्री मदनमोहनलाल जी अपने मंदिर से होली खेलते ––गुलाल उड़ाते हुए बगीचे पधारते हैं और वहाँ होली खेलकर तथा भोग आरोगकर पुनः अपने मंदिर को बाजारों में घूमते––रंग उड़ाते हुए पधारते हैं।

चैत्र कृष्ण दोज—पाटोत्सव। राजभोग से फूल मंडली में विराजमान वैशाख शुक्ल द्वितीया तक।

वैशाख कृष्ण एकादशी—श्री बल्लभाचारी जी का जन्मोत्सव।

वैशाख सुदी अक्षय तृतीया—राजभोग के समय श्रीभागवत जी का पूजन।

वैशाख चतुर्दशी—श्री नरसिंह जी का उत्सव।

ज्येष्ठ बदी—को सूर्य जिस दिन रोहणी नक्षत्र में हों उस दिन से श्रीजी के बदन में चंदन उत्सव।

ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी—श्री यमुना जी साक्षात् श्रीजी के सामने पधारती हैं। फूल बंगले अक्षय-तृतीया से रथ-यात्रा तक बनते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी—श्री गंगाजी का उत्सव।

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी—श्री द्वारिकाधीश जी महाराज का बड़ा उत्सव।

आषाढ़ कृष्ण एकम—जेष्ठा नक्षत्र के प्रारंभ में श्री जी के स्नान का परमोत्सव, स्नान के समय वेद-मंत्रों से स्नान-दर्शन।

आषाढ़ कृष्ण अष्टमी—श्री द्वारिकाधीश जी का पाटोत्सव। श्री पारख जी ने श्रीजी को विराजमान किया है।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया—पुष्य-नक्षत्र में रथ-यात्रा का उत्सव।

आषाढ़-पूर्णिमा—पूर्णमासी का उत्सव।

श्रावण कृष्ण एकादशी—श्रीजी का हिंडोला-उत्सव। प्रत्येक दिन हिंडोला झूलते हैं, घटाएँ बनती हैं।

हरयाली अमावस्या का उत्सव—घटा, फुहारे, रोशनी की धूम-धाम रहती है।

श्रावण शुक्ल तृतीया—लाड़ली जी का उत्सव, श्रीजी का फूलों के हिंडोला में विराजना।

श्रावण शुक्ल चतुर्थी—जामुनी घटा।

श्रावण शुक्ल पंचमी—नाग पंचमी-उत्सव।

श्रावण शुक्ल षष्ठ—लाल घटा।

श्रावण शुक्ल अष्टमी—गुलाबी घटा।

श्रावण शुक्ल दशमी—श्याम घटा, चंद्र मंडल, तारागण प्रकाश करते हैं।

श्रावण शुक्ल एकादशी—पवित्रा धारण।

श्रावण शुक्ल द्वादशी—श्री गुरुदेव को पवित्रा रक्खा जाता है। हिंडोला रोहिनी-चौक में पधारना।

श्रावण शुक्ल चतुर्दशी—सफेद घटा का उत्सव।

पूर्णमासी—रक्षा-बंधन।

भाद्रपद अष्टमी—जन्माष्टमी उत्सव। श्रीजी का पंचामृत स्नान, शृंगार, नई ध्वजा, ब्रज का महान् उत्सव।

भाद्रपद कृष्ण नवमी—नव बजे नंदोत्सव, नंद बाबा, गोपी, ग्वाल। श्रीजी पालने में झूलते हैं, यशोदा जी झुलाती हैं। भाद्र पद शुक्ल सप्तमी तक प्रतिदिन श्रीजी पालने में झूमते हैं।

भाद्रपद कृष्ण एकादशी—प्रत्येक एकादशी को जागरण, सावन से रासलीला होती है। नंद-उत्सव का रास होता है। ढाँड़ी-ढाँड़ा नाचते हैं। यह आठ रोज का उत्सव होता है। अनेक जगह प्रभु-लीला होती हैं।

राधा-अष्टमी—श्री राधाजी का छै दिन उत्सव होता है। आठ दिन तक ढाँड़ी-ढाँड़ा नाचते हैं।

भाद्रपद शुक्ल एकादशी—दान-लीला उत्सव। गोपी-ग्वाल का दान-लीला उत्सव।

भाद्रपद शुक्ल द्वादशी—श्री वामन-जयंती-उत्सव।

आश्विन शुक्ल ९ से—नौ दिन का मुकुट-काछनी का शृंगार।

आश्विन शुक्ल १०—श्रीजी शस्त्र धारण करते हैं। घोड़ा-पूजन व अन्नकूट-प्रारंभ होता है।

आश्विन शुक्ल १५—शरद-पूर्णिमा उत्सव के दर्शन।

कार्तिक शुक्ल १५—दीपदान आदि गोवर्धन-पूजन। श्री पुरुषोत्तम मास, काँसा-पात्र दान। नई सामग्री का भोग। यह परम उत्सव नियम पूर्वक एवं भाग्य-वश ब्रज-वासियों को ही मिलते हैं।

श्री वृंदावन

१ **वसंत पंचमी**—वसंत पंचमी के दिन शाह जी का मंदिर कई प्रकार से सजाया जाता है। उसी में एक कमरा वसंती रंग के कपड़ों, झाड़-फानूसों से सजाया जाता है जो कि बड़ा सुंदर लगता है। श्री बाँकेबिहारी जी की झाँकी।

२ **शिवरात्रि**—गोपेश्वर महादेव के मंदिर में झाँकी होती है।

३ **होली**—श्री बाँकेबिहारी जी के मंदिर में।

४ **रथ का मेला**—श्री रंगनाथ जी का उत्सव १० दिन तक रहता है। ठाकुर जी की सवारी प्रत्येक दिवस निकलती है। नवमी को रथ निकलता है, जो कि श्री मंदिर से निकलकर बगीचे तक जाता है। गीत चलता है—"अब रथ पहुँचौ साँवलिया कौ दूर।" होली बड़े धूम-धाम से होती है। बगीचे में फुहारे भी चलते हैं। चारों ओर से रसियों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। दशमी को घोड़े पर श्री रंगनाथ जी महाराज की सवारी जाती है और बगीचे में पधारती है। रात्रि को आतिशबाजी छूटती है। यह मेला 'रथ का मेला' के नाम से प्रसिद्ध है।

श्री रामानुज-संप्रदाय के भक्त इस उत्सव को मनाने आते हैं और प्रभु के दर्शन पाकर जीवन सफल समझते हैं। ब्रज-मंडल के स्त्री-पुरुष चारों ओर से एकत्रित होकर श्री वृंदावन के वक्षस्थल को सुशोभित करते हैं। श्री रामचंद्र जी के उपासक श्री तुलसीदास जी ने भी श्री बाँकेबिहारी जी से उसी रूप की इच्छा की थी। भगवान् ने उनकी ऐसी इच्छा के अनुसार वैसे ही दर्शन दिये।

"कहा कहों छबि आज की, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष-बाँन लेउ हाथ॥"

उसी प्रेरणा के अनुसार आज भी श्री रामचंद्र जी की भक्ति की ज्योति प्रकाशित है। यह मंदिर दक्षिण के आधार पर बनाया गया है। सेठ जी के द्वारा श्री विग्रह ने अपने भक्तों की अभिलाशा पूरी की। इसको प्रेमी-जन ही अपने जीवन को सफल बनाने के हेतु प्राप्त करते हैं। यह होली का उत्सव श्रृंगार-रस के नव अंगों में से है।

"नौ ही अंग सिंगार के, होरी, चोरी, दाँन॥"

—नागरिया

५, **चैत्र शुक्ल अष्टमी**—गंगौर का मेला गणपति-गौरी की पूजा।

६. **चैत्र शुक्ल नवमी**—रामनवमी, राम-जन्मोत्सव।

७. **शुक्ला एकम**—श्री बाँकेबिहारी जी का पंचाग-श्रवण।

८. **पूर्णमासी**—श्री हनुमज्जयंती।

वैशाख

९. **वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया**—श्री बाँकेबिहारी जी महाराज के सर्वांग चरण-दर्शन होते हैं। मथुरा और वृंदावन की परिक्रमा, बन-विहार की की जाती है और रास-लीला-गान इत्यादि के अतिरिक्त हरि-कीर्तन का भी आयोजन होता है। कुछ स्थानों पर साधुओं का—बन-बिहार के लीला का उत्सव आदि होते हैं।

१०. **वैशाख शुक्ल नवमी**—जानकी-नवमी। सीता जी का उत्सव अक्रूर घाट पर।

११. **वैशाख शुक्ल १० मी**—रास-मंडल, हित जी उत्सव, श्री राधावल्लभी संप्रदाय का होता है।
१२. **वैशाख शुक्ल चतुर्दशी**—नृसिंहावतार। श्री नृसिंह-जयंती बड़े धूम-धाम से मनाई जाती है।
१३. **वैशाख सुदी**—सूर्य-जयंती।

जेष्ठ

ब्रज भर में प्रधानतः श्री वृंदावन में फूल-बंगलों का पूर्णमासी के दिन आनंद रहता है।
१४. **ज्येष्ठ कृष्ण द्वितीया**—वन-विहार-परिक्रमा। आज के दिन श्री कृष्णमुरारी सखियों से खेले थे। रास-विहार वृंदावन में बंसी-बजाकर खेले थे। जल-यात्रा का उत्सव होता है, फुहारे चलते हैं। माधोदास जी के स्थान में रासोत्सव बड़ी धूम-धाम के साथ होता है।
१५. **ज्येष्ठ कृष्ण पंचमी**—वन-विहार, रात्रि में परिक्रमा होती है।
१६. **ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी**—रास-मंडल का मेला।
१७. **ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी**—निरजला-व्रत रक्खा जाता है।
१८. **ज्येष्ठ पूर्णमासी**—जल-यात्रा होती है। गज-ग्राह की लड़ाई तालाब के ऊपर सेठ जी के मंदिर में होती है।

आषाढ़

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रथ यात्रा का उत्सव होता है। श्री वृंदावन में शाम को बड़े रथ पर श्री ठाकुर जी विराजमान होकर 'ज्ञान-गुदड़ी' में पधारते हैं और भक्त जनों को दर्शन देते हैं। ठाकुर जी को चने की दाल और आम-जामुन का भोग लगता है।

आषाढ़ी पूर्णिमा को श्री मदनमोहन जी के मंदिर में भी घीओ का मेला तथा पवन-परीक्षा का मेला होता है।

श्रावण

श्री वृंदावन में हिंडोला के मेलों का उत्सव बड़ी धूम-धाम से होता है। श्रावण में हिंडोला राग (मलार) गाने का महत्त्व है। श्री ठाकुर जी प्रिया जी समेत हिंडोले में पधारते हैं। गायक हिंडोला-राग गा-गा कर हिंडोला में ठाकुर जी को झुलाया करते हैं। श्री स्वामी हरिदास जी महाराज, जिन्होंने श्री विहारी जी को लाड़-लड़ाये थे और जो गान-कला में प्रवीण थे वह इस उत्सव को केवल एक ही दिन मनाया करते थे। भक्ति के कारण हिंडोले के राग में वे स्वतः मुग्ध हो जाते थे। उपस्थित भक्तों को वह सुनने को मिलता था। रास-लीला एवं गीतों से मंदिरों की शोभा और भी बढ़ जाती है। प्रिया जी मान करती हैं और कवि कहता है—

"नाहिं झूलुंगी नाहिं झूलुंगी, स्याम के संग में नाहिं झूलुंगी।
कालिंदी के तीरे-तीरे, हों झूलत हो धीरे-धीरे ॥
कंटक ते उरझायौ चीरो सो नथिया में।
नाहिं झूलुंगी, नाहिं झूलुंगी स्याम के संग में नाहिं झूलुंगी ॥"

श्री ललितकिशोरी जी भी शाह जी के मंदिर में पदार्पण करती हैं। कहते हैं १०८ जोगी श्री श्री १०८ श्रीकृष्ण जी का रास करते थे। आवरण-सेज इत्यादि उसी ढंग से रखते थे। उनके मंदिर का फाटक रासलीला के लिये उसी प्रकार से बनाया गया है। अब रासलीला वहाँ नहीं होती है। वसंती-कमरा में जो कि एकादशी से त्रयोदशी तक खुला रहता है वहीं पर होती है।

श्रावण मास विशेष करके स्त्रियों के प्रफुल्लित होने का समय है। यह ऋतु होली और वसंत का-सा संबंध मनुष्य के उत्साह का समय है। मलार राग इन दिनों में ही गाया जाता है।

"सावन आया अजब बहार, रिम-झिम रिम-झिम पड़े फुहार।
सखियाँ गावें मेरी मलार, झुला चमन-चमन में डाले ॥"

श्री वृंदावन के दैनिक मेले और उत्सवों का वर्णन पूर्ण रूप से एक पुस्तक में किया जा सकता है।

"बृंदाबन के राजा दोऊ, स्याँम-राधिका राँनी।
चार पदारथ करत मंजूरी, मुक्त भरै जहँ पाँनी।।
करम-धरम जहाँ बटत जेबरी, घर-धाए ब्रह्म-ग्याँनी।
घट-घट प्रेंम-भक्ति की मँहमा, सहचरि व्यास-बखाँनी।।"

१९. **श्रावण कृष्ण पंचमी**—राधारमण जी का मेला। गोस्वामी गोपाल भट्ट जी का उत्सव।
२०. **श्रावण कृष्ण अष्टमी**—लोकनाथ गोसाईं जी का उत्सव।
२१. **श्रावण शुक्ल तृतीया**—दिन में चतुर्दशी तक हिंडोला-झूलन।
२२. **श्रावण शुक्ल नवमी**—ब्रह्म-कुंड का मेला।
२३. **श्रावण शुक्ल एकादशी**—पवित्रा धारण।
२४. **श्रावण शुक्ल पूर्णमासी**—ज्ञानगुदड़ी में मेला।

रासलीला और हिंडोला उत्सव नित्य-प्रति मंदिरों में होता है और खूब सजावटें रहती हैं।

भाद्रपद

श्री राधा-जयंती, श्री रसिक शिरोमणि स्वामी श्री हरिदास जी का पाटोत्सव तथा इसी दिन श्री कुंजविहारी जी महाराज के मंदिर में मध्यान्ह में रासलीला होती है और शाम को मंदिर से आप की सवारी बड़े समारोह से गोस्वामी बालक-समाज श्री निधवन-राजा के समेत पधारती है।

"श्री स्वाँमी हरिदास के, प्रान बिहारी लाल।
बाँकी-झाँकी निरख कें, छिन-छिन होंइ निहाल।।"

जन्माष्टमी पर श्री बाँकेबिहारी जी के मंदिर में भागवत-पाठ होता है। रात्रि को जन्म होने पर दर्शन नहीं होते हैं। एक ही दिन मंगला-आरती तीन बजे रात को होती है। मंगला-आरती प्रति-दिन नहीं होती।

२५. **भाद्रपद कृष्ण अष्टमी**—बाँकेबिहारी जी के मंदिर में एक बार साल भर में मंगला होती है।
२६. **भाद्रपद कृष्ण नवमी**—श्री वृंदावन में लट्ठा का मेला होता है। उसमें रंग जी के मंदिर में लट्ठे पर चढ़ने के लिये आपस में होड़ होती है। १ धोती, १ लोटा, ५ सेर मिठाई और २५ रुपये उसके सिर में बाँध दिये जाते हैं और जो कोई उस पर चढ़ जाता है उसको ही वह चीज़ें मिल जाती हैं।
२७. **भाद्रपद शुक्ल अष्टमी**—श्री वृंदावन में मौनीदास की टट्टी के स्थान पर मेला होता है। श्री बाँकेबिहारी जी के मंदिर में सिर्फ नाम मात्र को ही रास-लीला केवल एक ही दिन होती है। उसी रोज संध्या समय श्री बांकेबिहारी जी के साथ आप निधि-वन को जाते हैं। गोसाई श्री रासबिहारी के साथ जो कि हाथी पर सवार होते हैं, बड़े धूम-धाम के साथ, बाजे-गाजे के साथ निधिवन को जाते हैं। वहाँ रासलीला होती है। उसी दिन श्री राधावल्लभ जी के चबूतरे में रास होता है। यह जुगल उत्सव अत्यंत सुंदर और भक्ति-पूर्ण होता है।
२८. **भाद्रपद शुक्ल एकादशी**—जल-झूलनी का मेला होता है। विष्णु भगवान् चार मास की निद्रा से करवट बदलते हैं। कल्पवृक्ष की पूजा का मेला होता है।
२९. **आश्विन कृष्ण एकादशी**—साँझी, ५ दिन तक अनंदी बाई जी के मंदिर में।
३०. **आश्विन शुक्ल एकम**—दान-लीला, ज्ञान-गुदड़ी।
३१. **आश्विन शुक्ल दशमी**—दशहरा।
३२. **आश्विन शुक्ल एकादशी**—परिक्रमा का मेला होता है।

३३. **आश्विन शुक्ल पूर्णिमा**—शरद-पूर्णिमा। शरदोत्सव बड़ी धूम से होता है। इसी दिन श्री कुंजबिहारी जी महाराज मुरली, मुकुट, काछनी इत्यादि धारण करते हैं।

३४. **कार्तिक कृष्ण तृतीया**—दीपोत्सव । बिहारी जी के मंदिर में दीपावली उत्सव बड़ी धूम-धाम के साथ होता है।

३५. **कार्तिक शुक्ल एकम**—अन्नकूट, झाँकी श्री आनंदी बाई जी के यहाँ।

३६. **कार्तिक शुक्ल अष्टमी**—परिक्रमा, गौचारण।

३७. **कार्तिक शुक्ल द्वादशी**—दावानल का मेला ।

३८. **कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी**—केशी दानव-वध, केशीघाट वृंदावन पर।

३९. **कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी**—काली-मर्दन घाट पर नाग-लीला होती हैं।

४०. **अगहन कृष्ण पक्ष एकम**—रासलीला, हंसदास जी के मंदिर में बनखंडी महादेव पर एकादशी से कृष्ण पक्ष से पूर्णिमा तक।

४१. **अगहन कृष्ण पक्ष तृतीया**—बारे मास कलकत्तेवाले की कुंज में रासलीला होती है।

४२. **अगहन शुक्ल पक्ष पंचमी**—विहार-पंचमी, जन्मोत्सव, भरत-मिलाप।

४३. **अगहन शुक्ल पक्ष एकादशी**—दाऊ जी का मेला होता है।

४४. **पौष शुक्ल एकादशी से माघ बदी पंचमी**—चातुरमासोत्सव, श्री रंगनाथ जी के मंदिर में वैकुंठ-द्वार।

४५. **मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी**—श्री कुंजविहारी जी का प्रागट्योत्सव तथा श्री स्वामी आशुधीर जी महाराज तथा श्री विट्ठलविपुल जी महाराज का जन्मोत्सव। श्री बाँकेबिहारी जी पंचमी को निधिबन में पधारे थे।

४६. **माघ**—वसंतोत्सव, वसंती-कमरा, श्री बाँकेबिहारी जी का उत्सव।

"धन्य धन्य होरी अति प्यारी, लाल कपोलन की छबि न्यारी।"

४७. **फाल्गुन कृष्ण**—महाशिवरात्रि, श्री गोपेश्वर महादेव जी का मेला।

"नाराइन ब्रज-भूमि कों, सुर-पुर नावें माथ।
जहाँ आइ गोपी भए, श्री गोपेस्वर नाथ।।"

४८. **फाल्गुन ११**—मानसरोवर का मेला हर एक पूर्णिमा को होता है।

४९. **फाल्गुन शुक्ल पक्ष ११**—फूल-डोल।

५०. **एकादशी से पूर्णिमा**—बिहारी जी का होली-उत्सव।

५१. **चैत्र कृष्ण पक्ष एकम**—बिहारी जी का डोल।

५२. **चैत्र कृष्ण पक्ष पंचमी**—कालीदह, फूल डोल।

५३. **चैत्र बदी द्वितीया**—ब्रह्मोत्सव। १० दिन का रथ का मेला होता है।

दिव्य दृष्टि सों देखिऐं, ब्रज कौ बैभव मीत।
वही स्यांम-वृषभाँनुजा, वही प्रेम की रीति।।
वही मोर-सुक-सारिका, वही मधुप-गुंजार।
वह मरकट की नटखटी, सांझन की घुंघकार।।
वह पावस मन-मोंहना, वही हिंडोल मलार।
कुंज-गली वह ही भली, सहित सो सेवा-कुंज।
वह ही निधबन राज हीं, धीर-समीर सपुंज।।"

बलदेव, महावन, गोकुल और रावल

१. **चैत्र-पूर्णिमा**—बलदेव जी में मेला।

२. **बलदेव छठ**—भाद्रपद शुक्ल पक्ष।

३. **गोचारण लीला**—गोकुल, महावन, बलदेव।

४. **अखंड कीर्तन**—गोकुल-बलदेव ।

अगहन सुदी पूर्णमासी के दिन सात दिन का मेला लगता है। नंदोत्सव।

गोकुल

१. **भादों कृष्ण पक्ष अष्टमी**—जन्माष्टमी ।

२. **अन्नकूट**—कार्तिक शुक्ल पक्ष एकम ।

३. **मेला तृणाव्रत**—कार्तिक कृष्ण पक्ष चतुर्थी ।

४. **महावन**—आश्विन मास में राम-लीला ।

५. **कार्तिक शुक्ल अष्टमी**—पूला मेला ।

६. **माघ मास**—रविवार, मेला जखैया ।

७. **फाल्गुण शुक्ल एकादशी**—रमणरेती का मेला ।

८. **कार्तिक शुक्ल पंचमी**—परिक्रमा महावन, गोकुल और रावल की।

चैत्र

बलदेव जी के मंदिर में पूर्णमासी को रावण मारा जाता है और रामनवमी से राम-लीला आरंभ होती है ।

गोवर्धन-राधाकुंड

१. **आषाढ़ी पूर्णिमा**—पूजा ।

२. **दीपमालिका**—अन्नकूट ।

प्रत्येक चतुर्दशी और पूर्णिमा को परिक्रमा होती है और मेला भरता है।

३. **कार्तिक कृष्ण पक्ष अष्टमी**—राधाकुंड में मेला भरता है।

छाता तहसील

ब्रजमंडल का यह खंड विशेष रूप से ब्रज-सभ्यता का केंद्र रहा है। यहाँ पर अब भी वही प्राचीन शांति-भाव रूप से भक्ति देवी विराजमान हैं।

१. **कोसी कलाँ**—यह नंद बाबा का कोशस्थल है। यहाँ के मुख्य मेले तीन हैं। दशहरा—यह मेला ८० वर्ष से होता चला आ रहा है। इसे लालसिंह खत्री और दरबारीसिंह बनियाँ ने आरंभ किया था ।

२. **मोहर्रम** ।

३. **फूलडोल**—चैत्र शुक्ल पक्ष की द्वितीया को होता है। आसपास के गाँवों से जाट-लोग मेले में इकट्ठे होते हैं। गोमतीकुंड पर फूल-डोल होता है। यह एक बड़ा भारी तीर्थ और रमणीक स्थान है।

भाद्रपद की पूर्णमासी को जल-यात्रा का भी मेला होता है।

४. **बठैन कलाँ**—चैत्र कृष्ण पक्ष की तृतीया को 'हुरंगा' का मेला होता है। यहाँ पंद्रह-सोलह हजार आदमी इकट्ठा होता है। नटों की स्त्री और पुरुषों में लीला-युद्ध होता है। पुरुषों के पास बबूल की डाली होती है।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष की दशमी को यहाँ रास-लीला होती है। लगभग दश-बारह हजार आदमी इकट्ठे होते हैं।

महाराजा 'सूरजमल' का बनवाया हुआ श्री मदनमोहन जी का मंदिर है। सब जाट ही इसके शिष्य हैं और चैत्र कृष्ण पक्ष द्वितीया को मेला होता है। फूलडोल में भी सभी इकट्ठे होते हैं।

५. **निघमन्ना**—में ५।६ रवी उससानी को मुसलमानों का मेला होता है।

दधिग्राम के पास भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को मेला होता है। लगभग तीन-चार हजार मनुष्य एकत्रित होते हैं। बंदूक से बनावटी युद्ध होता है। ब्रजभूषण ठाकुर जी का मंदिर है, जो कि राजा मानसिंह का बनवाया हुआ है।

६. **सेही**––वैशाख और कार्तिक की अमावस्या को दो मेले होते हैं, जिनमें हिंदू और मुसलमान सभी मेलों में जाते हैं। जलेसर के पास जाति बूड़ती है। चढ़ावा हिंदू-मुसलमान दोनों अलग-अलग लेते हैं।

७. **गाजीपुर**––में भाद्रपद की शुक्ल पक्ष की द्वादशी को नटवर-लीला होती है। यहाँ पर डोगा (नाव) प्रेम-सरोवर में पड़ता है।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष की अष्टमी को रासलीला और चैत्र शुक्ल पक्ष की पंचमी को फूलडोल होता है।

८. **करहला**––भाद्र पद शुक्ल सप्तमी को रासलीला होती है। यहाँ ललिताकुंड और कृष्णकुंड हैं।

"हे कामिनी तू कर हिला, स्याँम पियासौ जात ।।"

राधारमण का मंदिर, कदमखंडी हैं। यहाँ पर कृष्णकुंड पर मेला होता है। गोपीनाथ जी का मंदिर टोडरमल-द्वारा निर्मित यहीं पर है।

९. **सेंमरी**––देवी श्यामला का मंदिर है। चैत्र की नवरात्रि भर यहाँ मेला रहता है।

१०. **साँचौली**––चैत्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी को ऐसा ही मेला होता है और दूसरा मेला अक्षय तृतीया को होता है।

११. **सियारौ**––माधवराव सिंधिया के बनवाये हुए तीन छोटे-छोटे मंदिर हैं। यहाँ फाल्गुन सुदी एकादशी को फूलडोल का मेला होता है।

१२. **कोकिलावन**––पाँडर गंगा और कुंड पर भादों सुदी १० को मेला होता है।

ब्रज-मंडल तथा मथुरा जिले के मेले

सतोहा––शांतनकुंड स्नान, भाद्रपद शुक्ल पक्ष छट्ठ वा द्वादशी।

महोली––बनयात्रा, भाद्रपद ।

जैंसिंहपुरा––कार्तिक शुक्ल नवमी––युगाद नवमी। आषाढ़ कृष्ण पक्ष एकादशी से कार्तिक शुक्ल पक्ष एकादशी तक प्रति एकादशी को परिक्रमा होती है।

जतीपुरा––भाद्रपद शुक्ल पक्ष एकादशी को रासलीला, कार्तिक शुक्ल पक्ष एकम को अन्नकूट और प्रत्येक पूर्णमाशी को परिक्रमा होती है।

छटीकरा––धूप का दिन, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा।

बाटी––भाद्रपद कृष्ण पक्ष द्वादशी।

ऊँचौ गाँव––भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को दोपहर से पहले मेला भरता है।

ओवा––चैत्र शुक्ल पंचमी फूलडोल, श्रावण शुक्ल पंचमी को हिंडोला।

तरौली––कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी से पूर्णमासी तक (बूढ़े नाना) का मेल।

सियारौ––फाल्गुण शुक्ल पक्ष एकादशी फूलडोल।

सेंमरी––चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी को मेला, अक्षय तृतीया।

साँखी––भाद्रपद शुक्ल पक्ष पूर्णिमा रासलीला।

पिसायौ––भाद्रपद शुक्ल पक्ष नवमी, बनयात्रा।

पारसौली––भाद्रपद शुक्ल षष्ठी।

मानपुर––भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को मानलीला, देवता का मेला।

मंडोई––भाद्रपद शुक्ल पक्ष द्वादशी फूलडोल।

खायरौ––मेला-कृष्णकुंड।

करहला––भाद्रपद शुक्ल सप्तमी।

कमड़ी––बनयात्रा, भाद्रपद शुक्ल षष्ठी रासलीला, चैत्र शुक्ल पंचमी को फूलडोल।

गाजीपुर––भाद्रपद शुक्ल पक्ष की द्वादशी।

चिकसौली––भाद्रपद शुक्ल नवमी और त्रयोदशी को मोरकुटी पर मेला।

सेही—बैशाख और कार्तिक पूर्णमासी को मेला।

साँचौली—चैत्र शुक्ल पक्ष सप्तमी, आश्विन शुक्ल सप्तमी को देवी का मेला।

फारैन—फाल्गुन सुदी पूर्णिमा को प्रहलाद का मेला।

पै गाँव—आश्विन कृष्ण सप्तमी, नरसी नागा जी का मेला।

मंझोई—देवी का मेला, चैत्र शुक्ल अष्टमी, आश्विन शुक्ल अष्टमी।

कोटबन—चैत्र कृष्ण तृतीया हुरंगा का मेला।

खरौल—चैत्र शुक्ल चतुर्दशी आश्विन शुक्ल चतुर्दशी बाराही-मेला।

जाब—बनयात्रा केंद्र, हुरंगा चैत्र कृष्ण द्वतीया।

हसनपुर नगर—चैत्र कृष्ण तृतीया को फूलडोल।

हुलवाना—भाद्रपद शुक्ल षष्ठी, दाऊ जी का मेला।

गिडौयौ—चैत्र कृष्ण तृतीया, फूलडोल।

धर्मसिंघा—भाद्रपद शुक्ल षष्ठी रासलीला।

गौहारी—चैत्र कृष्ण पंचमी फूलडोल।

दह गाँव—भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को मेला।

निशमवरा—चैत्र में मेला।

बरहनाँ—भाद्रपद शुक्ल अष्टमी, रासलीला।

काँमर—चैत्र कृष्ण द्वितीया—फूलडोल।

कोकिलाबन—हर शनिवार को और भाद्रपद की पूर्णमासी को मेला भरता है। भाद्रपद शुक्ल दशमी रासलीला।

बठैन कलाँ—चैत्र कृष्ण तृतीया, होली का मेला जिसमें लगभग पंद्रह-सोलह हजार मनुष्य इकट्ठे होते हैं।

कोसी कलाँ—भाद्रपद की पूर्णमासी को जलयात्रा, चैत्र शक्ल द्वितीया को फूलडोल, दशहरा और मुहर्रम को भी मेला भरता है।

खानपुर—फाल्गुन शुक्ल द्वादशी को फलडोल।

मानसकुंड—भाद्रपद शुक्ल षष्ठी।

राधाकुंड—कार्तिक कृष्ण अष्टमी को मेला होता है।

तारसी—भाद्रपद शुक्ल एकादशी।

पाँनी गाँव—फाल्गुन कृष्ण एकादशी।

रावल—भाद्रपद शुक्ल अष्टमी।

कुकर गाँव—चैत्र कृष्ण सप्तमी फूलडोल।

ढारौली—चैत्र शुक्ल एकम।

मरना खुर्द—चैत्र शुक्ल द्वितीया।

अकबरपुर—साह माधुरीशरण, चैत्र शुक्ल अष्टमी।

अमानुल्लापुर—बूढ़े बाबा का मेला।

नरी-सेंमरी—चैत्र शुक्ल अष्टमी और नवमी।

पसौली—भाद्रपद शुक्ल षष्ठी।

लाड़पुर—मेला सती, बलदेव पूर्णमासी को होता है।

मन्नौड़—कार्तिकी पूर्णमासी।

मानपुर—भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को मानलीला का मेला।

चौमुँहा—ब्रह्मा जी का मेला, भाद्रपद शुक्ल पूर्णमासी।

छटीकरा—गरुड़गोविंद का मेला, श्रावण शुक्ल अष्टमी को पंचतीर्थ।
मझोई—चैत्र शुक्ल अष्टमी और आश्विन शुक्ल अष्टमी को मेला होता है।

ब्रज-मंडल के नवीन मेले

मथुरा—गीता का मेला २३ दिसंबर को बिरला-मंदिर जैसिंहपुरा में भरता है।
वृंदावन—गुरुकुल का मेला। २५ दिसंबर से ३१ दिसंबर को होता है।

ब्रज में होली के मेले

ब्रजमंडल में मुख्यतः इस संबंध के मेले फाल्गुन के आरंभ ही से प्रारंभ होने लगते हैं। वसंतोत्सव को मथुरा में गुलाल की होली श्री केशवदेव जी और द्वारिकानाथ जी के मंदिर में होती है। वृंदावन में शाह विहारीलाल जी के मंदिर में वसंती-कमरा खुलता है, जो कि यात्रियों एवं ब्रजवासियों को आकर्शित करता है।

"धन्य धन्य होरी अति प्यारी, लाल कदोलँन की छबि न्यारी॥
कुंज-भवन में कुंजबिहारी, अबीर-गुलाल उड़ावत हैं।
सुनों सखी यें कुंजविहारी, राग बसंती-गावत हैं॥"

मुख्य मेले

बरसाने का हुरंगा (नवमी फाल्गुन शुक्ल)—एक व्यक्ति के अनुभव पर।

"ऐसौ रस बरसै बरसाँनें, सो रस तीन लोक में नाँइ।
सुर तेतीसँन की मत बौरी, भज कें चले सरग की पौरी,
देख देख यै ब्रज की होरी, ब्रह्मा मन-पछताइ॥
ऐसौ रस बरसै बरसाँनें, सो रस तिरलोकी में नाँइ॥"

मेला-राधारानी—माँट, राया, खेड़ा के मनुष्य आते हैं।
अखंड कीर्तन—महावन में, लगभग पाँच मील से आदमी आते हैं।
रँगीली होली—बरसाना और नंदगाँव में क्रमशः होती है।
रंगभरनी एकादशी—सुरीर और नौझील में मेला भरता है।
रथ का मेला—वृंदावन में।
फूल-डोल—आयराखेड़ा।
चैत्र पूर्णमासी—बलदेव।
व्यास-पूर्णिमा—गोवर्धन में जो कि कोसी कलाँ से आठ मील है।
बलदेव छट्ठ—बलदाऊ जी सादाबाद, मथुरा और माँट के आदमी जाते हैं।
बूढ़ीलीला—बरसाना।
मेला चर्तुमुखी—चौमुहा, तरौली—सेंटर।
अहोई अष्टमी—राधाकुंड, दूर-दूर से आदमी आते हैं।
गोचारण—गोकुल, नंदगाँव, महावन, बलदेव, बरसाना और सौंख।
बूढ़े बाबा का मेला—तरौली में १० मील के घेरे में
बड़ी सेंमरी—सेंमरी।

ब्रज-मंडल के रासलीलोत्सव

रासलीला श्री ब्रज-मंडल के सब सुखदायनी मेलों में से परम रसदायनी और श्रृंगार रस का परम आनंद देनेवाली प्रणाली है। श्री नागरीदास ने लिखा है—

"नवरस में कवियन कह्यौ, सरस अधिक सिंगार।
ताहू में पुनि अति सरस, सो यह रास-बिहार॥"

नौ ही अँग सिंगार के, होरी, चोरी, दाँन।
छल हि करन औ रित-गमन, बिरह-मिलन और माँन ।।
नागरिया नव नागरी, खेलत रास बिलास।
पल-पल वारों हे सखी, नित नव नागरि दास ।।"

श्री वृंदावन नित्य रास-स्थली युगल स्वरूप श्री प्रिया-प्रीतम का है। वहाँ नित्य रासलीला क्रम ६ से ११ बजे तक प्रतिदिन श्री बंसीवट में होती है और साँझ को श्री ब्रह्मचारी के मंदिर में होती है। अगहन में कलकत्तावाले मंदिर--श्री राधावल्लभ जी के घेरे में होती है। मुख्य स्थान श्री बाँकेबिहारी जी का बगीचा, श्री हरिदास जी की कुंज, श्री उड़याबाबा जी का स्थान इत्यादि हैं। रास-लीला श्री 'ब्रजमंडल-यात्रा में श्री गोसाँई जी की यात्रा में नित्य-प्रति और मुख्य-मुख्य स्थानों पर होती है।

इसके अतिरिक्त रास-लीलाएँ जिन तिथियों पर होती रहती हैं। उसका ब्यौरा निम्न-लिखित है--

कोकिलावन-नंदग्राम--भाद्रपद शुक्ल पक्ष दशमी।
बरहना--भाद्रपद शुक्ल अष्टमी।
कँमई--चैत्र शुक्ल पक्ष पंचमी।
करहला--भाद्रपद शुक्ल सप्तमी।
मंडोई--भाद्रपद पूर्णमासी।
संकेत--श्रावणी पूर्णमासी।
रासमंडल वृंदावन--वैशाख शुक्ल दशमी।
बन-बिहार--ज्येष्ठ कृष्ण पंचमी।
रास-मंडल---ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी।
ब्रह्मकुंड--आश्विन कृष्ण एकादशी से पूर्णमासी तक।
ज्ञानगुदड़ी-वृंदावन--आश्विन शुक्ल एकम।
काली-मरदनघाट--वृंदावन--नागलीला, कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी।
चैनघाट--त्राग की लीला, रासमंडल वृंदावन, अगहन कृष्ण एकम।
गोकरणनारायण--जन्माष्टमी, भाद्रपद कृष्ण अष्टमी।
ब्रह्मांडघाट--महावन--प्रति रविवार। अब शायद नहीं होती।
चिंता-हरणघाट--प्रति सोमवार।
बठैन कलाँ--भाद्रपद शुक्ल दशमी।
धर्मसिहा--भाद्रपद शुक्ल षष्ठी।
सतोहा (मथुरा)--शांतनकुंड, भाद्रपद शुक्ल द्वादशी।
महोली (मधुवन)--बनयात्रा, भाद्रपद।
जैसिंहपुरा--कार्तिक शुक्ल नवमी, युगाद नवमी।
जतीपुरा--भाद्रपद शुक्ल एकादशी रासलीला।
साँखी--भाद्रपद पूर्णमासी, रासलीला।

इसके अतिरिक्त दाऊजी में हुरंगा, दोज के दिन देखने लायक होता है। अतएव उत्सव और मेले फूलडोल के करीब अच्छे रूप से ब्रज-मंडल में मनाये जाते हैं।

--::oo::--